Position of Women in

उत्तर प्रदेश में महिलाओं की [illegible]

1900-1947

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

की

डी.फिल. उपाधि के लिए

प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

शोध निर्देशक

प्रो. चन्द्र प्रकाश झा

शोधार्थी

र[illegible]

मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

2000

Position of Women in U.P.

उत्तर प्रदेश में महिलाओं की स्थिति

1900-1947

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

की

डी.फिल. उपाधि के लिए

प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

शोध निर्देशक

प्रो. चन्द्र प्रकाश झा

शोधार्थी

रचना पाण्डेय

मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

2000

विषय-सूची

आमुख

प्रकृति द्वारा उत्पन्न नारी और पुरुष अपने-अपने मे अपूर्ण हैं। उनकी पूर्णता का प्रतीक ही समाज का विकास है, जिसमें पुरुष से अधिक नारी की भूमिका होती है। समाज को स्त्री ने जन्म दिया। वह केवल पुरुष की जननी ही नहीं, उसकी पालक भी है। सभ्यता का आरम्भ भी स्त्री ने किया था। नारी निश्चित ही आदिम इतिहास से अब तक समाज के बहुत ही महत्वपूर्ण आधे हिस्से की प्रतिनिधि है।

पाषाण काल से लेकर आज तक नारी की सामाजिक यात्रा अत्यंत दुरुह, दुर्गम सामाजिक बन्धनों, अत्याचारों, अमानवीय मर्यादाओं और शोषण के दौर से गुजरी है। हजारों वर्षों से संसार में जितने भी प्रकार के अन्याय इस पृथ्वी को विषाक्त करते रहे हैं, उनमें सबसे बड़ा अन्याय नर और नारी के भेद का है।

पितृसत्तात्मक समाज के इतिहास लेखन में महिलाओं के साथ पूर्ण-रूपेण न्याय नहीं किया जा सका है; महिलाओ की या तो उपेक्षा की जाती रही है और या उन्हें भुलाया जाता रहा है।

सिन्धु घाटी की सभ्यता के काल में प्राप्त आयुध युक्त मातृदेवी की मूर्तियाँ इस बात को प्रमाणित करती हैं कि तत्कालीन मानव-समूह में मातृसत्ता की मान्यता रही होगी और तत्कालीन समाज के सदस्य के रूप में वह सब प्रकार के अधिकारों से प्रतिष्ठित रही होगी। इतिहास इसकी पुष्टि करता है कि वेदकालीन भारत के प्राचीनतम समाज में नारी के कर्तव्य और अधिकार पुरुषों के समान थे। उसमें न तो हीनता का बोध था और न आतंक का भाव। वह तत्कालीन शिक्षा के क्षेत्र में पुरुष के समकक्ष थी। विवाह को भी उस काल में धार्मिक

अनुष्ठान माना गया। वधू अपने पतिगृह की साम्राज्ञी, सभी कार्यों में सहयोगिनी, धर्मकार्यों में सहधर्मिणी, पारिवारिक सम्पत्ति में सहअधिकारिणी तथा राजनीति–न्याय–यज्ञकर्म–विचार विनिमय आदि में उसकी सहभागिनी होती थी।

उत्तर वैदिक काल में निरन्तर युद्धों और संघर्षों ने तत्कालीन समाज पर प्रतिकूल प्रभाव डाले और परम्परावादी विचारो की रूढियों ने भी अपना शिकंजा इस प्रकार कसा कि पुरुष की प्रतिपल सहयोगी और समान अधिकार सम्पन्न नारी, पुरुष की व्यक्तिगत सम्पत्ति मानी जाने लगी, जिसका प्रमाण रामायण और महाभारत काल में स्पष्ट है।

नारी का निम्नगामी क्रम इस कदर तीव्रगामी रहा कि बौद्ध काल में सभी वर्ग की, सवर्ण–असवर्ण, सम्पन्न–विपन्न नारियों को भिक्षुणी होना पडा और भगवान बुद्ध ने नारियों के उद्धार के लिए उन्हें भिक्षुणी बनने की स्वीकृति प्रदान कर उन्हें धर्म प्रचार और साधना आदि के कार्यों में प्रयुक्त किया।

स्मृतिकाल के स्मृति ग्रंथ इस बात को प्रमाणित करते हैं कि तत्कालीन समाज–वैदिक काल के आदर्शों और उत्तर वैदिक काल की विकृतियों के सम्मिश्रण के रूप में सामने आया। उस समय यद्यपि नारी के सभी अधिकारों को सीमित किया गया तथापि महाजनपदों तथा गणराज्यों के विकास में नारी का सक्रिय योगदान रहा।

मध्ययुगीन भारत युद्धों से संत्रस्त, आक्रमणों से ध्वस्त, संघर्षरत राज्यों में विभाजित, आर्थिक बोझ से जर्जरित था। इस काल में सामाजिक दृष्टि से नारी की हीनता में वृद्धि हुई। इन परिस्थितियों के बावजूद चैतन्य महाप्रभु, सगुण भक्तों, निर्गुण सन्तों, तन्त्रसाधकों

और वैष्णव भक्तों द्वारा दिए गए सन्देशों के परिणामस्वरूप इस युग में हमें युद्धों में पराक्रम दिखानेवाली, जौहर व्रत करनेवाली पद्मिनी, कर्णदेवी तथा मीरा, सहजो, दयाबाई आदि साधिकाएँ प्राप्त हुईं।

वस्तुतः उस युग के झंझावाती दौर में नारी की स्थिति, परिस्थिति, उसके अधिकार और कर्तव्य, समाज में उसके स्थान आदि विषयों का परीक्षण कर पाना अत्यंत कठिन था, क्योंकि तत्कालीन समाज में उसके पास अधिकार के नाम पर पुरुष की दासता थी और कर्तव्य के नाम पर था बन्धन, शोषण और प्राणदान।

यह निर्विवाद है कि किसी भी संस्कृति, सभ्यता और समाज के विकास का आकलन करते समय नारी की स्थिति की विवेचना अनिवार्य हो जाती है। नारी को मानवीय रूप में स्वीकार करने और उसे मानवीय अधिकारों से युक्त करने के प्रश्न उन्नीसवीं सदी के सुधारकों ने उठाने प्रारम्भ किए और एक लम्बे संघर्ष तथा परिवर्तन के दौर के उपरान्त उन्होंने नारी समाज को सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक जागरण के रास्ते पर चलने की जो दिशा प्रदान की, उसमें 1900 से 1947 के काल में उत्तर प्रदेश की महिलाओं की क्या स्थिति थी; यही प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में विवेचित है। शोध की भौगोलिक सीमा और कालावधि; दोनों ही सार्थक होते हुए भी स्वाभाविक रूप से लचीले हैं, क्योंकि भारतीय नारी का देश और काल में निश्चित परिसीमन पूर्णतया सम्भव नहीं होता।

यह सामान्य स्वीकृत तथ्य है कि उपर्युक्त कालावधि में भारत में एक अभूतपूर्व राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रपात हुआ, जिसकी परिणति एक लम्बी दासता के बाद भारत की स्वतन्त्रता के रूप में हुई और इस आन्दोलन में उत्तर प्रदेश की महिलाओं ने बढ़-चढ़ कर भाग

लिया। 1919 के पश्चात् स्त्रियों की समस्याओं को राजनीति से जोडा जाने लगा और नारी आन्दोलन स्वतन्त्रता संग्राम का एक अंग बन गया। राजनीति में स्त्रियों का प्रवेश स्वतन्त्रता आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण घटना स्वीकार की जा सकती है।

इस काल में समाज में विद्यमान लिग पर आधारित विषमताओं के प्रति जागरुकता, सामाजिक-राजनीतिक सजगता व शैक्षिक प्रगति ने उत्तर प्रदेश की महिलाओं के लिए अनेक नई दिशाओं को खोला। वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुई। सदैव ही घर की चहारदीवारी में रहने वाली नारी; जीवन के हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ हर कार्य में हिस्सा लेने लगी। जीवन का कोई भी क्षेत्र चाहे वो शिक्षा का क्षेत्र हो, बैंक हो, चिकित्सा क्षेत्र हो, साहित्यिक क्षेत्र हो, सामाजिक क्षेत्र हो, राजनीतिक अथवा प्रशासनिक क्षेत्र हो, यहाँ तक कि सेना, पुलिस एवं न्यायाधीश के रूप में भी कार्य करने लगी। यही कारण है कि 20वीं सदी के प्रथम पचास वर्षो को 'नारी-जागृति' का और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पचास वर्षो को 'नारी प्रगति का काल' कहा जा सकता है।

लेकिन इस काल में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक प्रगति की ओर अग्रसर होने वाली महिलाओं की संख्या बहुत कम थी और सामान्य महिलायें इनकी गतिविधियों से अनभिज्ञ थीं। वे उपेक्षा, अवहेलना व शारीरिक-मानसिक शोषण से ग्रस्त थीं। इसलिए इस शोध-कार्य में 1900 से 1947 के मध्य सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश की महिलाओं की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा शैक्षिक स्थिति को खोजने और जानने का प्रयास किया गया है।
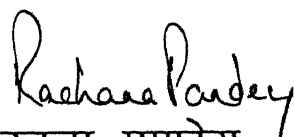
इस शोध कार्य के समापन पर मैं अपने शोध-निर्देशक प्रो चन्द्र प्रकाश झा के प्रति गहरे कृतज्ञता बोध को स्वीकार करती हूँ, जिन्होंने मुझे इस सम्बन्ध में अध्ययन की प्रेरणा दी और इस जटिल विषय के अन्वेषण में बहुमूल्य मार्ग-निर्देशन किया। मैं आभारी हूँ अपनी विभागाध्यक्ष तथा विभाग के उन सभी सदस्यों की, जिन्होंने मुझे हमेशा प्रोत्साहित किया।

मैं राष्ट्रीय अभिलेखागार (नई दिल्ली), नेहरू स्मृति संग्रहालय और पुस्तकालय (नई दिल्ली), भारतीय इतिहास एव अनुसंधान परिषद, (नई दिल्ली), गाँधी भवन, पब्लिक लाइब्रेरी, भारतीय भवन, विश्वविद्यालय पुस्तकालय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन (इलाहाबाद), राजकीय अभिलेखागार (लखनऊ), गोविन्द बल्लभ पन्त सामाजिक शोध संस्थान (इलाहाबाद) के अधिकारियों के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने इस शोध-प्रबन्ध की सामग्री प्रदान करने में महत्वपूर्ण योग दिया।

अंत में मैं अपने कार्य को अपनी माँ श्रीमती किरण बाला पाण्डेय और पिता श्री श्याम कृष्ण पाण्डेय को समर्पित करती हूँ, जिन्होने मुझे सहयोग, प्रेरणा और इस कार्य को पूर्ण करने की शक्ति प्रदान की।

Rachana Pandey
रचना पाण्डेय

दिनांक : 13.3.2000
स्थान . Allahabad

United provinces
(संयुक्त प्रान्त)
Tehri Garhwal State
Garhwal
Dehra Dun
Saharanpur
Almora
Muzaffarnagar
Bijnor
NainiTal
Meerut
Moradabad
Rampur State
Pilibhit
Bulandshahr
Bareilly
Badayn
Kheri
Aligarh
Shahjahanpur
Etah
Mathura
Bahraich
Sitapur
Hardoi
Gonda
Agra
Mainpuri
Farrukhabad
Lucknow
Bara Banki
Basti
Gorakhpur
Etawah
Faizabad
Cawnpore
Unao
Sultanpur
Rae Bareli
Azamgarh
Jalaun
Fatehpur
Partapgarh
Ballia
Hamirpur
Jaunpur
Ghazipur
Jhansi
Allahabad
Benaras State
Benaras
Banda
Benaras State
Mirzapur

अध्याय -1

उन्नीसवीं सदी का नारी-जीवन

हिमालय की सुरम्य पर्वत श्रेणियों और दक्षिण में विन्ध्य के रत्नगर्भा पठारों के बीच स्थित उत्तर प्रदेश भारत का हृदय स्थल है। इसका अतीत महान है। यह राज्य प्राचीन काल से ही भारतीय सभ्यता और संस्कृति का केन्द्र रहा है। यहीं पर अधिकांश ऐतिहासिक महाजनपदों का उदय हुआ था। यदि हम इसे तीर्थ स्थानों एवं महापुरुषों का प्रान्त कहें तो अत्युक्ति न होगी। प्रयाग, हरिद्वार, बद्रीनाथ, केदारनाथ, मथुरा, काशी, अयोध्या आदि तीर्थ स्थान इसी प्रदेश में हैं। रामायण, महाभारत का केन्द्र स्थल यह प्रदेश रहा है। राजनीतिक उथल-पुथल, सामाजिक-आर्थिक क्रियाकलापों, सांस्कृतिक व साहित्यिक परिवेश के धनी इस प्रदेश का भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल से आज तक भारतीय राजनीति, समाज, संस्कृति व आर्थिक व्यवस्था की दशा व दिशा का निर्धारण यह प्रदेश ही करता रहा है। हिन्दी भाषा साहित्य के सृजन व विकास में इस प्रदेश का अभूतपूर्व योगदान है। 1857 की क्रान्ति का केन्द्र यह प्रदेश था। 1947 से पूर्व यह प्रदेश 'संयुक्त प्रान्त' के नाम से जाना जाता था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जनवरी 1950 में संयुक्त-प्रान्त का नाम बदलकर 'उत्तर प्रदेश' रखा गया।

इस प्रदेश की नारियों ने सम्पूर्ण समाज व देश को आन्दोलित किया और नेतृत्व प्रदान किया है। अपने को राष्ट्र की धारा में समाहित ही नहीं किया है, अपितु अपनी राष्ट्रीय पहचान भी स्थापित की है। प्रथम मुक्ति संग्राम में वीरांगना झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने अदम्य शौर्य, साहस व वीरता का परिचय दिया और अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करते हुए वीरगति प्राप्त की। 1857 की क्रान्ति में भाग लेने वाली अन्य प्रमुख महिलायें थीं—लखनऊ की बेगम हज़रत महल,

ललिता बक्शी झलकारी, सुन्दर, काशीबाई, मोतीबाई, रानी रामगढ़, रानी तुलसीपुर, मुन्दर आदि।[1] इन्होंने इतिहास में अपनी गौरव-गाथा ही अंकित नहीं की अपितु उत्तर प्रदेश की नारियों के आत्मबल को भी प्रदर्शित किया। यद्यपि ये संख्या में थोड़ी थीं तथापि ये भारतीय नारी की आत्मा और विशेषताओं का प्रतीक थीं। परन्तु इन नारियों के अतिरिक्त बहुसंख्यक नारियाँ काल के प्रवाह में इतने बंधनों में जकड़ दी गयी थीं कि उन्हें बाहरी दुनिया की कोई खबर नहीं थी। उनमें अपनी दयनीय स्थिति पर विचार करने का ज्ञान भी नहीं था। उन्हें इस बात की आशा भी नहीं थी कि उनके जीवन और उनकी पारिवारिक अवस्था में किसी तरह का सुधार हो सकने की भी कोई संभावना है अथवा नहीं। स्त्रियों का कार्यक्षेत्र सदियों से घर समझा जाता था। घर के बाहर की दुनिया से भी उसका कोई सम्बन्ध हो सकता है, इस पर मानव समाज ने कभी विचार नहीं किया। विवाह करना, पति की आज्ञा का पालन करना, सन्तानोत्पत्ति, यही उनके जीवन का ध्येय माना गया था। समाज जड़, स्थिर तथा अमानवीय स्थिति में पहुंच गया था। सारा सामाजिक ढांचा अन्याय और असमानता पर आधारित था। रूढ़ि, परम्परा, रीति-रिवाज तथा धर्म के नाम पर अनेक बुराइयां समाज में प्रचलित थीं। ऐसे परिवेश में शताब्दियों से नारी पददलित होती आई थी। भारतीय समाज में महिलाओं को पुरुषों के समक्ष हमेशा द्वितीय श्रेणी का दर्जा दिया जाता था।

उन्नीसवीं सदी का नारी जीवन

अठारहवीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य के छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण सम्पूर्ण देश में जो राजनीतिक उथल-पुथल हुई, उसने

नारी की पतनोन्मुख दशा को और भी अधिक शोचनीय बना दिया। सदियों के शोषण व अत्याचार के कारण वे इस दशा में पहुँची थीं। अधिकांश महिलायें उन मूक पशुओं के सदृश थीं जिनका स्वयं कोई अस्तित्व नहीं होता था और जो अत्याचार किये जाने पर भी आवाज़ नहीं उठा सकती थीं।[2] उनकी भावनाओं, इच्छाओं, सम्भावनाओ और शक्तियों का कोई महत्व नहीं था। नारी के स्वतन्त्र, आत्म निर्भर, स्वयं में पूर्ण इकाई के अस्तित्व को पुरुष संचालित समाज ने निरन्तर अवहेलना की दृष्टि से देखा। स्वयं नारी भी अपनी स्थिति के प्रति अज्ञान का शिकार रही और इस दयनीय स्थिति को उसने अपनी नियति माना।

उन्नीसवीं सदी के समाज में नारी की स्थिति मानवीय भूमि पर न होकर उपभोग्य सामग्री के सदृश थी। पद्मिनी सेनगुप्ता के अनुसार—"इस उपमहाद्वीप के इतिहास में अंग्रेजों के शासनकाल में नारी की स्थिति अपने निम्नतम स्तर पर पहुँच गयी थी।"[3] समाज में बालिका वध, बाल विवाह, सती प्रथा, बहु विवाह, अनमेल विवाह, विधवाओं की दुर्दशा, स्त्री शिक्षा के प्रति उदासीनता आदि कुप्रथाओं ने अपनी गहरी जड़ें जमा ली थीं। ये मान्यतायें केवल रूढ़ियां ही नहीं बनी थीं अपितु उनके प्रति धार्मिक आस्था भी विद्यमान रही थी। इन कुरीतियों का पालन करना मुख्य धर्म बन गया था। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि व्यक्ति, समाज तथा राज्य की अपेक्षा धर्म प्रमुख माना जाता था।[4]

भारतीय समाज पितृसत्तात्मक समाज है। इसका समाज में नारी की स्थिति से सीधा सम्बन्ध है। पुरुष प्रधान समाज में नारी की

स्थिति स्वयं ही दोयम दर्जे की हो जाती है। नारी का संघर्ष उसके जन्म से ही प्रारम्भ हो जाता था। परिवार में पुत्र, पिता का प्राकृतिक उत्तराधिकारी होता था जो वंश को आगे बढ़ाता था, जबकि माता-पिता के लिए पुत्री का जन्म दुःख तथा दुर्भाग्य का प्रतीक था। अनेक स्थानों पर उसे जन्मते ही मार डाला जाता था। बालिका वध की यह क्रूर प्रथा अधिकतर राजपूत परिवारों में व्याप्त थी, जिसके मूल में आर्थिक कारण और अज्ञान भरा अभिमान था। उत्तर प्रदेश में भी यह प्रथा विद्यमान थी। बालिका वध के सम्बन्ध में आजमगढ़ के कलेक्टर व मजिस्ट्रेट थामसन ने 1836 में लिखा था "अवध के क्षेत्र की सीमा पर स्थित राजपूतों की एक शाखा में 10,000 लोगों में एक भी लडकी नहीं थी।"[5]

बनारस में हुए एक सर्वेक्षण के अनुसार तीन सौ गाँवों में से 62 गाँव ऐसे थे जहाँ 6 वर्ष से कम आयु की एक भी लड़की नहीं थी।[6] 1839 में इलाहाबाद के मजिस्ट्रेट मॉन्टगोमरी ने इस सामाजिक कुप्रथा की भयानकता को समझा व इसे समाप्त करने के लिए कुछ प्रयास किये, जिसके परिणामस्वरूप बहुत अधिक संख्या में लोगों ने इस स्थान को छोड़कर इसकी सीमा से लगे रींवा राज्य में जाना प्रारम्भ कर दिया।[7] 1869 में प्रदेश में की गई एक जाँच के अनुसार प्रदेश के अनेक जिलों में बालिका वध की प्रथा प्रचलित पाई गई।[8]

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में बाल-विवाह की प्रथा अपनी चरमावस्था पर थी। बालिका वध की क्रूर प्रथा से जो लडकियाँ बच जाती थीं, उन लड़कियों का बहुत कम उम्र में किसी भी उम्र के लड़के के साथ विवाह कर दिया जाता था। अंग्रेजों के आगमन के

समय बालिकाओं का विवाह आठ या नौ वर्ष की अवस्था में कर दिया जाता था।[9] बुच के अनुसार हिन्दुओं में विवाह की आयु 6 से 10 वर्ष की थी।[10] अल्पायु में विवाह कर दिये जाने के कारण बालिकायें अपने शारीरिक और मानसिक विकास करने के अवसर से वंचित रह जाती थीं। बाल-विवाह के परिणामत. अपरिपक्व अवस्था में मातृत्व के कारण माताओ और बच्चों की मृत्यु दर में वृद्धि हुई।[11] कम आयु में संतान होने के कारण संतान भी दुर्बल और रोगी होती थी। इन सबके अतिरिक्त वे शिक्षा सुविधाओं से भी वंचित हो गई थीं। इस प्रथा के दुष्प्रभावों पर प्रकाश डालते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा, "बाल-विवाह से असामयिक सन्तानोत्पत्ति होती है तथा अल्पायु में सतान धारण करने के कारण हमारी स्त्रियाँ अल्पायु होती हैं। उनकी दुर्बल तथा रोगी संतान देश में भिखारियों की संख्या बढाने का कारण बनती है। आज घर-घर में इतनी अधिक विधवायें पाये जाने का मूल कारण बाल-विवाह ही है।"

बाल विवाह के कारण हिन्दू समाज में विधवाओं और बाल विधवाओं की संख्या बढ़ती जा रही थी। विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार नहीं था। परिवार की सम्पत्ति पर भी उनका कोई अधिकार नहीं था। समाज व परिवार में उनकी स्थिति शोचनीय थी। विधवाओं पर अनेक सामाजिक व धार्मिक प्रतिबन्ध होते थे। भारतीय हिन्दू समाज विधवाओं को जीवन की आवश्यक शर्तों से भी वंचित रखता था और उन्हें परित्यक्त तथा निराशापूर्ण जीवन जीने के लिए बाध्य किया जाता था। पति को खा जाने वाली राक्षसी और डायन आदि उपाधियों से उनका प्रतिदिन ही स्वागत होता था।

पति की मृत देह के साथ स्त्री का जलती हुई चिता में प्राण विसर्जन करना 'सती' होना कहलाता था। विधवा होने पर स्त्री को अपने पति के साथ सती होना पड़ता था। समाज आत्महत्या के इस लोमहर्षक सार्वजनिक समारोह में गौरव से सम्मिलित होता था। यही नहीं सती होने वाली महिला का गुणगान किया जाता था। इसके विवरण भी मिलते हैं कि सती होने के लिए स्त्री पर अत्याचार किये जाते थे। ऐसी घटनाएं हिन्दू स्त्री का करुण चित्र तो उपस्थित करती ही हैं, साथ ही यह भी दिखाती हैं कि उसके प्रति किये गये व्यवहार में भारतीयों ने मानवता को भुला दिया था।

इस्लाम के भारत में प्रवेश के साथ भारतीय समाज में पर्दा प्रथा का आगमन हुआ जो उन्नीसवीं शताब्दी में अपनी पूर्ण संकुचितता के साथ विद्यमान था। पर्दे को दैहिक पवित्रता या कौमार्य की रक्षा के लिए उचित माना जाता था। पर्दे ने भारतीय नारी को मुख्य धारा से बिल्कुल अलग-थलग कर दिया और वह पराधीनता, दीनता, हीनता व कष्टप्रद जीवन जीने को विवश हो गई। हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों में परदे की प्रथा का पालन अधिक कठोरता से किया जाता था। निम्न वर्ग की स्त्रियों के घर के बाहर पुरुषों के साथ काम करने के कारण उनमें पर्दा प्रथा प्रचलित नहीं थी, किन्तु उच्च तथा मध्यम वर्ग में यह सम्मान का सूचक मानी जाने लगी थी। इसका प्रभाव मध्यम वर्ग की स्त्रियों के शारीरिक, सामाजिक, मानसिक विकास पर पड़ा। ए. हबीबुल्ला ने लिखा है कि—"पर्दा महिलाओं को घर से बाहर किये जाने वाले कार्यों के लिए असमर्थ बना देता है। घर में आर्थिक रूप से पुरुष पर निर्भर होने की विवशता और पुरुष के उत्कृष्ट होने की धारणा स्त्री का कोई निजी व्यक्तित्व विकसित नहीं होने देती।"[12]

उन्नीसवीं शताब्दी के समाज में बहुविवाह भी प्रचलित था। हिन्दू कानून के अनुसार पुरुष कितने भी विवाह कर सकता था। इस्लाम में भी पुरुष को चार पत्नियाँ तक रखने की आज्ञा थी। सन्तानोत्पत्ति तथा भोग-विलास की बढती प्रवृत्ति के कारण पुरुष बहु-विवाह करने लगे। धर्म प्रचारकों ने भी इसे उचित ठहराया फलत स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आई।

भारतीय समाज में वेद कालीन संरचना के काल से ही दहेज प्रथा को सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। तत्कालीन समाज में दहेज का दार्शनिक आधार था, किन्तु कालान्तर में यह प्रथा समाज के लिए अभिशाप बन गयी। निर्धन माता-पिता दहेज न होने के कारण या तो अपनी बेटी का अनमेल विवाह कर देते थे या उसका विवाह ही नहीं कर पाते थे। वस्तुतः इस प्रथा ने स्त्रियों के जीवन को नारकीय बना दिया था।

समाज में नारी का शारीरिक शोषण एक अन्य प्रमुख समस्या थी। समाज में वेश्यावृत्ति व्याप्त थी। वेश्यावृत्ति नारी-शोषण का निम्नतम स्तर है। उन्नीसवीं शताब्दी में अनेक ऐसी सामाजिक परम्पराएं प्रचलित थीं जिन्होंने वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहित किया। मन्दिरों में देवदासी प्रथा प्रचलित थी। उत्तर प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्र की नायक जाति में परम्परागत रूप से जीविका कमाने के लिए वेश्यावृत्ति प्रचलित थी।[13] उत्तरकाशी क्षेत्र में अनुसूचित जाति के कुछ वर्गों में विवाह के समय लिए गये कर्ज को चुकाने के लिए स्त्रियों से वेश्यावृत्ति करायी जाती है।[14] बाल-विवाह में वृद्धि, कम आयु में विधवा होना, विधवा पुनर्विवाह पर लगा सामाजिक प्रतिबन्ध, जाति व्यवस्था की जटिलता, दहेज प्रथा,

सयुक्त परिवारों में बढता विघटन और सामान्यतया समाज में स्त्रियो को प्राप्त निम्न जीवन स्तर ने वेश्यावृत्ति की प्रथा को बढावा दिया। इसी के साथ उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में औद्योगीकरण और नगरीकरण के कारण भी वेश्यावृत्ति बढी।[15]

आर्थिक दृष्टि से हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों की स्त्रियों की स्थिति खराब थी। आर्थिक दृष्टि से वे पुरुष समाज पर पूर्ण रूप से निर्भर थीं। आर्थिक दृष्टि से नारी समाज को चार वर्गों में बाटा जा सकता है। उच्च या अत्यन्त सम्पन्न वर्ग, उच्च मध्यम वर्ग, निम्न मध्यम वर्ग तथा श्रमिक सर्वहारा वर्ग। इनमें से श्रमिक वर्ग की नारी को पति के साथ श्रम के सभी कार्यों में सहयोग देने का अधिकार था और विषम सामाजिक सम्बन्धों को तोड़ डालने का भी। इस वर्ग की महिलायें जीविका के लिए कृषि, हस्तशिल्प व घरेलू नौकरानियों के कार्य करती थीं, परन्तु श्रम का आधिक्य और जीवन की सुविधाओं का सर्वथा अभाव उसकी मुक्ति के मार्ग को मलिन करता रहता था। अन्य वर्गों की स्त्रियां आर्थिक दृष्टि से पूर्णतया पुरुषों पर निर्भर थीं।

हिन्दू स्त्रियों को पैतृक सम्पत्ति प्राप्त करने का अधिकार नहीं था और न ही विषम परिस्थितियों में अनुपयोगी विवाह को समाप्त करने का अधिकार था। मुसलमान स्त्रियों को सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त था, लेकिन उन्हें पुरुषों की तुलना में केवल आधी सम्पत्ति ग्रहण करने का ही अधिकार था।[16] लेकिन मुस्लिम समाज में भी उन्हें सम्पत्ति में अधिकार दिये जाने के व्यावहारिक उदाहरण कम ही मिलते थे। उन्हें सैद्धान्तिक रूप से तलाक का अधिकार तो था, पर पुरुषों की अपेक्षा बहुत कम।

वास्तव में भारतीय समाज लिंग सम्बन्धी भेदभावों पर आधारित पितृसत्तात्मक समाज रहा है। स्त्रियों के साथ सदैव से ही भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता रहा है। लिंग विषयक असमानता की गहरी जड़ें समाज में व्याप्त हैं।[17] समाजीकरण की शक्तिशाली प्रक्रिया द्वारा यह असमानता अधिकाधिक सुदृढ़ होती रही है। इस प्रक्रिया से स्त्रिया पुरुषों के समक्ष अधीनता की विचारधारा की अभ्यस्त हुईं। शिक्षा पर प्रतिबन्ध, आर्थिक अधिकारों से वंचित होना और बाल विवाह इसी प्रक्रिया तथा व्यवहार के परिणाम रहे। समाज का कतिपय वर्ग परिवर्तन चाहता था, परन्तु रूढ़िवादी तत्व इतने प्रबल थे कि परिवर्तन चाहने वाले व्यक्ति को विद्रोही समझ कर प्रताड़ित किया जाता था।[18]

उन्नीसवीं शताब्दी सांस्कृतिक जागरण के दृष्टिकोण से विद्रोह का युग स्वीकार की जाती है। इस काल में मध्ययुगीन विचारधारा का खण्डन किया गया और नवीन विचारधाराओं ने जन्म लिया। जीवन के प्रति दृष्टिकोण में महान परिवर्तन परिलक्षित हुआ। इसने भारत की तात्कालिक जड़ता को समाप्त करने का प्रयास किया और जन-जीवन को झकझोर दिया। सांस्कृतिक जागरण का प्रारम्भ आधुनिक पश्चिमी संस्कृति के सम्पर्क से हुआ और जिसका कारण था मध्ययुगीन भारतीय सामंती सभ्यता की निष्क्रियता, जो यूरोपीय औद्योगिक पूंजीवादी सभ्यता की उच्चता से प्रगट हो गई थी।[19] रेल, तार आदि वैज्ञानिक साधनों के प्रचार से सामाजिक संगठन की सीमा विस्तृत हो गयी।[20] इससे भारतीय समाज और जीवन को निर्धारित करने वाली मान्यताओं में परिवर्तन होने लगा। पाश्चात्य विचारधारा के प्रचार, अंग्रेजी शिक्षा, अंग्रेजी रहन-सहन, ईसाई मिशनरियों के प्रचार-प्रसार से नवीन चेतना प्रस्फुटित हुई और गतिशील बनी। औद्योगिक सभ्यता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा

यूरोपीय भौतिकवादी संस्कृति आदि ऐसे क्रान्तिकारी तत्व थे जिनका भारतीय सामंतवादी सभ्यता, विश्वास मूलक परम्परागत दृष्टिकोण, अन्धविश्वास तथा धार्मिक–आध्यात्मिक संस्कृति से संघर्ष हुआ।[21] इसी संघर्ष के परिणाम स्वरूप नवीन विचारधाराओं ने जन्म लिया।

भारतीय विचारकों ने अपने समाज व सस्कृति को सहज तथा उदार बनाने के लिए सुधारों की आवश्यकता समझी और विभिन्न धार्मिक व सामाजिक आन्दोलनों को जन्म दिया।[22] सुधारकों ने धर्म, समाज एव संस्कृति को समयानुकूल आधुनिक रूप देने का प्रयत्न किया। भारतीय नारी, जो सदियों से पुरुष प्रधान समाज की दी हुई व्यवस्थाओं और पतनोन्मुख समाज की स्थितियों में रहने के कारण पिछड़े वर्गों में गिनी जाती थी, प्रायः प्रत्येक सुधार आन्दोलन का आधार बनी। उन्नीसवीं शताब्दी का काल इतिहास में भारतीय नारी को सभी प्रकार के सामाजिक बन्धनों से मुक्ति प्रदान करने और समानता का अधिकार देने में सुप्रभात काल था। वस्तुतः उन्नीसवीं सदी की इस सामाजिक–राजनीतिक जागरुकता ने भारतीय नारी के सामाजिक अवमूल्यन पर जनमानस को गंभीरता से विचार करने के लिए प्रेरित किया।[23]

राजा राममोहन राय इस युग के शिक्षित मध्यम वर्ग के प्रतीक थे और सुधार आन्दोलनों के प्रवर्तक थे। उन्होंने आधुनिक सामाजिक विचारों को प्रतिष्ठित करने के लिए 1828 में 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की। उनके सामाजिक सुधारों का केन्द्रविन्दु नारी की समस्यायें थीं। इनमें बाल–विवाह, सती प्रथा, पर्दा, बहु–विवाह, सीमित सम्पत्तिगत अधिकार, स्त्रियों की अशिक्षा आदि प्रमुख थीं। ब्रह्म समाज

ने स्त्री शिक्षा को स्त्रियों की स्थिति में सुधार का सर्वोत्तम उपकरण माना।[24] प्रार्थना समाज, आर्य समाज और अन्य समाज सुधारकों का भी मुख्य लक्ष्य स्त्रियों की स्थिति में सुधार करना था। उन्नीसवीं शताब्दी में समाज सुधारकों ने समाज द्वारा युगों से पीड़ित नारी को मानवीय अधिकार देने के लिए मध्ययुगीन रूढ़िवादी मान्यताओं के प्रति विद्रोह किया।[25] इस युग के इस प्रयास को साहसिक घटना के रूप में देखना चाहिए। तात्कालिक स्थिति में रूढ़िवादी समाज का विरोध करना ही सबसे बड़ी क्रान्ति थी।[26]

इन सुधारकों ने सती प्रथा का विरोध, विधवा पुनर्विवाह का समर्थन, बाल विवाह निषेध, नारी शिक्षा, विवाह की आयु में वृद्धि आदि अनेक नवीन मान्यतायें समाज के समक्ष प्रस्तुत कीं और इस प्रक्रिया को गति देते हुए आन्दोलन संचालित किये। राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती आदि ने उस सामान्य नारी की व्यथा का अनुभव किया, जिसके पास अधिकार के नाम पर दासता थी और कर्तव्य के नाम पर प्राणदान। ईश्वर चन्द विद्यासागर विधवा पुनर्विवाह का समर्थन करके कट्टर रूढ़िवादिता का विरोध करते थे।[27] विवेकानन्द का कथन दृष्टव्य है—"मैं ऐसे धर्म तथा ईश्वर पर विश्वास नहीं करता, जो विधवा के आँसू न पोंछ सके तथा अनाथ के लिए रोटी का टुकड़ा न दे सके।[28]

इस्लाम धर्म में भी स्त्रियों की दशा में सुधार के प्रयास प्रारम्भ हुए। मुस्लिम समाज में आधुनिक शिक्षा का प्रसार देर से हुआ अतः सुधारों की प्रक्रिया भी देर से प्रारम्भ हुई। सर सैयद अहमद खाँ ने मुस्लिम समाज में व्याप्त बाल-विवाह, बहुविवाह, पर्दा प्रथा का

विरोध किया। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में मुस्लिम स्त्रियों को शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने के लिए आन्दोलन चलाये गये, जिसका नेतृत्व भोपाल की बेगम, अलीगढ के शेख अब्दुल्ला और लखनऊ के जस्टिस करामत हुसैन आदि ने किया।[29] कुछ सुधारकों ने उच्च वर्गों में कठोरता से प्रतिबन्धित विधवा पुनर्विवाह को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। पुत्रियों को पिता की सम्पत्ति में हिस्सेदारी न दिये जाने की आलोचना प्रारम्भ हुई। परदे को समाप्त करने में सुधारकों को प्राप्त असफलता के कारण ये सुधार आन्दोलन मुस्लिम महिलाओं की स्थिति को सुधारने में असफल रहे, परन्तु शहरी शिक्षित मध्यम वर्ग मे परिवार के अन्दर उनकी स्थिति में कुछ सुधार अवश्य हुआ।[30]

उन्नीसवीं सदी के आरम्भ तक अंग्रेजों ने भारतीयों के धर्म तथा समाज में कोई हस्तक्षेप नहीं किया, किन्तु 19वीं सदी के मध्य तक पाश्चात्य शिक्षा से शिक्षित नवीन बुद्धिजीवी वर्ग के सहयोग से ब्रिटिश सरकार ने अमानवीय कुरीतियों को दूर करने के लिए कानून बनाये। राजा राममोहन राय के प्रयासों के फलस्वरूप 1829 में कानून द्वारा सती प्रथा को समाप्त घोषित किया गया।[31] इसने आत्म-अभिव्यक्ति के अनेक नये द्वारों को खोला। इसी के साथ भारतीय स्त्रियों के इतिहास में एक नये अध्याय का सूत्रपात हुआ।[32]

ईश्वरचन्द विद्यासागर के प्रयासों से 1857 की क्रान्ति के एक वर्ष पूर्व 1856 में 'हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम' पारित हुआ।[33] इसके द्वारा विधवा पुनर्विवाह को वैध मान लिया गया। बम्बई में प्रोफेसर डी.के. कर्वे और मद्रास में वीरेश लिंगम् पण्टुलू ने विधवा पुनर्विवाह की दिशा में विशेष प्रयास किया, परन्तु समस्याओं का

समाधान खोजना सरल कार्य नहीं था। जनमत अभी इसके पक्ष में नहीं बना था अतः कुछ इनी-गिनी विधवायें ही इससे लाभान्वित हो सकीं। संस्कारो और परम्पराओं की जड़ें इतनी गहरी थीं कि कानूनी सुधारों के कुछ झटकों से उन्हें उखाड फेंकना सम्भव न था। रूढ़िवादी तत्वों के कट्टर विरोध के कारण समाज नवीन सुधारों को अंगीकार करने मे सहज नहीं था। यदि कोई सुधारक किसी विधवा से विवाह करने की इच्छा प्रगट करता तो उसके शिक्षित मित्र समाज के भय से विवाह भोज तक में सम्मिलित नहीं होते थे।[34] विधवा पुनर्विवाह का समाज इतना विरोध करता था कि सुधारकों ने विधवा को आत्मनिर्भर बनाने के लिए शिक्षा का सहारा लिया।[35] समाज सुधारकों ने पीड़ित विधवाओं को सहारा देने के लिए विधवा आश्रम, नारी शिक्षा निकेतन जैसी सामाजिक संस्थाओं का निर्माण किया। यह सस्थायें समाज में नवीन विचारों का प्रचार भी करती थीं।

सरकार ने 1870 में पारित एक अधिनियम के द्वारा बालिका वध की क्रूर प्रथा को समाप्त करने का प्रयास किया, जिसके द्वारा जनता पर दृष्टि रखने और जन्म व मृत्यु को कठोरता के साथ पंजीकृत कराने का प्रावधान किया गया। कानून बनाये जाने के बावजूद भी यह कुरीति प्रचलन में रही।[36]

सुधारको ने बाल-विवाह का भी विरोध किया, जिसके फलस्वरूप 1872 में 'नेटिव मैरिज ऐक्ट' पारित किया गया, जिसके द्वारा 14 वर्ष से कम आयु की कन्याओं का विवाह वर्जित कर दिया गया। बहुविवाह को गैरकानूनी घोषित किया गया।[37] लेकिन यह कानून बहुत प्रभावशाली नहीं हो सका। एक पारसी सुधारक वी.एम. मलाबारी

के प्रयत्नों के फलस्वरूप 1891 में 'सम्मति आयु अधिनियम' पारित हुआ जिसमें 12 वर्ष से कम आयु की कन्याओं के विवाह पर रोक लगा दी गई। लेकिन सरकार की उदासीनता और समाज की रूढिवादिता के कारण यह कानून बहुत सार्थक नहीं हो पाया।

हिन्दू समाज में विवाहित महिलाओं का पति की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता था। 1874 में पारित 'विवाहित महिला सम्पत्ति अधिनियम' द्वारा स्त्रीधन की व्यवस्था को विस्तृत किया गया। इसके द्वारा स्त्रियों को माता-पिता या पति द्वारा दिये गये स्त्रीधन और उस धन पर, जो उसने अपनी रचनात्मक या साहित्यिक प्रतिभा से प्राप्त किया हो, उसका अधिकार माना गया।[38]

सुधार कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए कुछ महिलायें भी आगे आईं। स्त्रियों का पहला संगठन 'सखी समिति' 1882 में रवीन्द्र नाथ टैगोर की बहन स्वर्ण कुमारी देवी ने स्थापित किया।[39] सुधार कार्यक्रमों में भाग लेने वाली महिलाओं में पण्डिता रमाबाई प्रमुख हैं। उन्होंने 1892 में 'शारदा सदन' की स्थापना की। उनकी महानतम उपलब्धि 1898 में स्थापित 'मुक्ति सदन' थी, जिसकी स्थापना स्त्रियों व बच्चों के कल्याण के लिए की गई थी।[40]

1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना नारी की स्थिति पर दूरगामी प्रभाव डालने वाला एक अन्य महत्वपूर्ण कदम था।[41] कांग्रेस की स्थापना करते हुए ए.ओ. ह्यूम ने कहा था-"विभिन्न विचारों वाले राजनीतिज्ञों को यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि बिना देश की नारी का उद्धार किये राजनीतिक मुक्ति के लिए उनके द्वारा किये गये सभी कार्य व प्रयास व्यर्थ हो जायेंगे।"[42]

इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के सभी आन्दोलनों की मुख्य समस्या नारी को समाज में सम्मानित स्थान प्रदान करने से सम्बन्धित थी।[43] सुधारवादी प्रयास अपनी शैशवावस्था में थे। चूंकि नारी से सम्बन्धित समस्याओं की जड़ें बहुत गहरी थीं, अतः इन प्रयासों के फलस्वरूप नारी की स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं आया, फिर भी आने वाले दिनों के सुधारकों का पथ प्रदर्शन करने में वे सफल हुए।[44] इन सुधारकों के अथक परिश्रम का ही यह परिणाम रहा कि जो नारी सामाजिक समारोह के रूप में सती होकर आत्महत्या करने के लिए विवश थी,[45] वह उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में सामाजिक रंगमंच पर आकर अपनी समस्याओं पर चिन्तन करके स्वतन्त्रता पूर्वक विचार करने लगी थी।[46] इन सामाजिक सुधारकों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण सफलता यह थी कि उन्होंने भारतीय स्त्रियों में जागृति उत्पन्न की, जिसके परिणामस्वरूप स्त्रियों ने अपने उत्तरदायित्वों को समझा और समाज में अपने उचित स्थान के लिए स्वयं संघर्ष प्रारम्भ किया।

सुधार आन्दोलनों द्वारा एक ओर सती प्रथा का उन्मूलन, बाल विवाह पर प्रतिबन्ध, विधवा पुनर्विवाह को स्वीकृति, विवाहित स्त्रियों को सम्पत्तिगत अधिकार जैसे कानून बनाकर उन्हें सामाजिक अन्याय से कुछ राहत प्रदान की गई, दूसरी ओर नारी शिक्षा से सम्बन्धित कुछ गलत अवधारणाओं को समाप्त करने में भी सफलता मिली। नारी के उद्धार के लिए उसकी सामाजिक विकलांगता, आर्थिक निर्भरता और राजनीतिक शक्तिहीनता को दूर करने के लिए उन्नीसवीं शताब्दी में जो प्रयास किये गये उसी के परिणामस्वरूप इस काल को 'नारी जागरण' का काल माना जाता है।[47]

सुधारवादी आन्दोलनों के फलस्वरूप होने वाली प्रगति बहुत धीमी रही। सदियों से जमी अज्ञानता की काई को एकदम कैसे हटाया जा सकता था? सुधार के लिए चल रहे आन्दोलनों में सुधारवादियो और रूढिवादियों के मध्य स्पष्ट विभाजक रेखायें रहीं और वैचारिक संघर्ष जारी रहा। भारत की तत्कालीन परिस्थितियों ने भारतीय समाज में परोक्ष रूप से बड़े परिवर्तन की पृष्ठभूमि बनानी प्रारम्भ कर दी थी। इन प्रयत्नों में गति तभी आ सकी जब बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे स्त्रियों ने स्वयं इस ओर रुचि प्रदर्शित की और महिला संगठनों ने स्वयं इस कार्य को अपने हाथ में ले लिया।

शैक्षिक स्थिति

शिक्षा किसी भी देश, समाज एवं काल के उद्देश्यों, आदर्शों और स्तर को प्रतिबिम्बित करती है। सामान्यतः सामाजिक स्थिति और स्तर का सबसे अच्छा मापदण्ड शिक्षा की स्थिति और स्तर होता है। प्राचीन काल की महान उपलब्धियों में से एक यह भी थी कि महिलाओ को शिक्षा की अनेक सुविधायें प्राप्त थीं। धीरे-धीरे पुरुष प्रधान समाज में महिलायें शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार खोने लगीं। मध्यकालीन भारत नारी शिक्षा की दृष्टि से 'अन्धकारमय युग' कहा जा सकता है। स्त्रियों की सामाजिक दशा हीन होने से स्त्री शिक्षा का महत्व भी न्यून हो गया था। स्त्री को घर की चहारदीवारी में कैद कर वाह्य संपर्क से वंचित कर दिया गया। वह मानसिक रूप से कमजोर समझी जाने लगी।[48] सामाजिक रूढ़िवादिता व बाल विवाह ने स्त्री शिक्षा के मार्ग में बाधा उत्पन्न की। पर्दाप्रथा की अनिवार्यता ने स्त्री शिक्षा को पूर्ण रूप से अवरुद्ध कर दिया।

अंग्रेजों के भारत आगमन के समय शिक्षा बहुत ही हीन अवस्था में थी। भारतीय बालिकाओं को शिक्षा प्राप्त करने के योग्य नहीं समझा जाता था।[49] उन्हें उतनी ही शिक्षा दी जाती थी कि मुसलमान कन्यायें 'कुरान' व हिन्दू कन्यायें धार्मिक साहित्य पढ सकें। ब्रिटिश राज के प्रारम्भिक दिनों मे शिक्षा का उद्देश्य प्रधानत शासन कार्य चलाने हेतु योग्य वर्ग का निर्माण करना था। चूंकि महिलाओं का इससे कोई सम्बन्ध नहीं था अत· वे इस योजना के अन्तर्गत नहीं आयीं। स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में ईसाई मिशनरियों ने उल्लेखनीय कार्य किया। ईसाई मिशन ही भारत में नारी शिक्षा के प्रथम प्रचारक थे और लड़कियों के अधिकांश स्कूल मिशनरियों के प्रयत्न का परिणाम थे।[50] यद्यपि उन्हें अपने उद्देश्यों में आंशिक सफलता ही मिली और उनके स्कूलों में बालिकायें केवल अक्षर ज्ञान ही कर सकीं,[51] फिर भी नारी शिक्षा की नींव डालने वालों के रूप में उनका नाम और योगदान अग्रगण्य रहेगा।

अंग्रेजी शिक्षा तथा आधुनिक विचारों से सम्पन्न पुरुष वर्ग ने निरक्षर तथा रूढ़िवादी संस्कृति में जकड़ी नारी के उद्धार के लिए नारी शिक्षा को महत्व दिया। राजा रामामोहन राय ने जब भारतीय जनमानस के नवजागरण के लिए शिक्षा को प्रचारित किया तो उन्होंने स्त्री शिक्षा का भी समर्थन किया। उन्होंने पुराने शास्त्रों से जनमानस को परिचित कराया व बताया कि प्राचीन काल में महिलायें किस प्रकार उच्च शिक्षा प्राप्त करती थीं।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लड़कियों की शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। उदारवादी अंग्रेजों ने स्त्री शिक्षा के महत्व को

समझा। उनमें से एक थे डेविड हेयर, जिन्होंने 1820 में अपने व्यय से कन्याओं का स्कूल खोला। जे.ई.डी. बेथ्यून ने लड़कियों के लिए 1849 में एक विद्यालय स्थापित किया।[52] बेथ्यून के इस कार्य का कट्टर रुढिवादी हिन्दुओं ने डटकर विरोध किया, परन्तु शनैः-शनै विरोध निस्तेज हो गया। बेथ्यून के इस प्रयास ने अन्य स्थानों पर भी लड़कियों के स्कूलो की स्थापना की पृष्ठभूमि तैयार की। बेथ्यून के देहान्त के पश्चात् लार्ड डलहौजी ने स्कूल का संचालन अपने हाथ में ले लिया था। स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में ईश्वर चन्द विद्यासागर का योगदान भी सराहनीय रहा। वे बंगाल के कम से कम 35 विद्यालयों से सम्बद्ध थे। स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में ज्योतिबा फुले और उनकी पत्नी सावित्रीबाई ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

समाज सुधारकों के सतत् प्रयासों के परिणामस्वरूप अग्रेजी सरकार द्वारा भारतीय शिक्षा के विकास के लिए किया गया पहला संगठित प्रयास 1854 में जारी 'वुड्स का घोषणापत्र' था। इसमें भारत में महिलाओं की शिक्षा के पक्ष में संस्तुति दी गई।[53] इसके द्वारा स्त्री शिक्षा को राज्य शिक्षा व्यवस्था का अंग माना गया। स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन देने का आदेश दिया गया और सार्वजनिक कन्या पाठशालाओं को उदारता पूर्वक अनुदान देने की बात कही गयी।[54]

1855 में आगरा जिले में स्थानीय शिक्षा अधिकारियों ने लड़कियों की शिक्षा के पक्ष में एक आन्दोलन संचालित किया।[55] दो वर्ष के अन्तर्गत इसने उल्लेखनीय प्रगति की और यह अभियान मथुरा और मैनपुरी नगर में व्यापक हो गया। सन् 1857 के पूर्व ही कतिपय स्कूल इंस्पेक्टरों के प्रयत्नों से उत्तर प्रदेश के आगरा, मथुरा एवं

मैनपुरी जिलों में कन्या पाठशालाएं स्थापित हो चुकी थीं।[56] मैनपुरी नगर में लड़कियों के स्कूल में अच्छे भद्र परिवारों की 32 मुसलमान लड़किया शिक्षा प्राप्त कर रही थीं।[57] अमेरिकन मैथोडिस्ट चर्च की कुमारी इजाबेला थोबर्न द्वारा स्त्रियों की उच्च शिक्षा के लिए सराहनीय कार्य किया गया। उन्होंने 1870 में लखनऊ में 'इजाबेला थोबर्न कालेज' की स्थापना की। उत्तरी भारत में ये कन्याओं का प्रथम कॉलेज था, जिसमें विज्ञान की पढ़ाई भी होती थी। आर्य समाज भी उग्रता, तीव्रता व दृढ़ता से नारी जागरण का कार्य कर रहा था, जिसका हिन्दी भाषा-भाषी जनता, विशेषतः उत्तर प्रदेश की जनता पर अत्यधिक गहरा प्रभाव पडा।

सन् 1882 के 'हण्टर आयोग' ने भी कन्या पाठशालाओं के लिए उदार आर्थिक अनुदान, महिला शिक्षिकाओं के लिए ग्रान्ट की व्यवस्था, प्राथमिक पाठशालाओं के लिए एक सुगम पाठ्यक्रम की आवश्यकता, स्त्री प्रशिक्षण विद्यालयों का प्रबन्ध एवं कन्या शिक्षा के निरीक्षण के लिए इंस्पेक्टरों की नियुक्ति पर बल दिया।[58]

शनैः-शनैः सामाजिक पूर्वाग्रह समाप्त होने लगे। फिर भी उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दुओं और मुसलमान लडकियों में शिक्षा के प्रसार में नगण्य प्रगति ही हुई थी। उत्तर प्रदेश में तो पूर्ण नगण्यता की ही स्थिति थी, परन्तु इतना अवश्य था कि सुधार कार्यों के लिए वातावरण तैयार हो रहा था।

***

सन्दर्भ

1 अस्थाना, प्रतिमा, वुमन मूवमेन्ट इन इण्डिया, पृ. 109

2. वही, पृ. 5

3. सेनगुप्ता, पद्मिनी, पाइनियर वुमेन ऑफ इण्डिया, पृ 84

4 दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, पृ 414

5 प्रोसीडिन्ग्स ऑफ द काउन्सिल ऑफ द गवर्नर जनरल ऑफ इण्डिया, 1870, खण्ड IX, पृ. 5

6. वही पृ. 6

7. ब्राउन, जे.सी., इण्डियन इनफैन्टीसाइड, पृ. 71

8. अस्थाना, प्रतिमा, वुमेन मूवमेन्ट इन इण्डिया, पृ 105

9. अल्टेकर, ए.एस., पोजिशन ऑफ वुमन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ. 61

10. बुच, एम.ए., राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ इण्डियन लिबरलिज्म, पृ. 53

11. नेहरू, श्यामा कुमारी (सम्पादित), आवर कॉज, पृ 81

12. हबीबुल्ला, ए , सेक्ल्यूशन आफ वुमेन

13. टुवर्ड्स इक्वालिटी, रिपोर्ट ऑफ द कमिटी ऑन द स्टेटस ऑफ वुमन इन इण्डिया, 1974, पृ. 92

14. वही पृ. 70

15 वही पृ. 92

16. शुक्ला, आर.एल. (सम्पादित), आधुनिक भारत का इतिहास, पृ. 256

17. कलकत्ता हिस्टॉरिकल जर्नल, खण्ड 9, अंक 2, (जनवरी–जून, 1985)

18. जकारिया, रिनेसा इण्डिया, पृ. 21

19. विपिन चन्द्रा, द राइज़ एण्ड ग्रोथ ऑफ इकोनॉमिक नेशनलिज्म इन इण्डिया, पृ. 74

20. देसाई, ए.आर., द सोशल बैकग्राउण्ड ऑफ इण्डियन नैशनलिज्म, पृ. 275

21. वही, पृ. 249

22. फरकुहार, मॉडर्न रिलिजस मूवमेन्ट्स इन इण्डिया (1955), पृ. 5

23. वुमन एण्ड स्टेटस ऑफ वुमन इन इण्डियन सोसाइटी, फरमा के.एल.एम. प्राइवेट लिमिटेड, कलकत्ता (1979), पृ.36

24 टुवर्ड्स इक्वालिटी, रिपोर्ट आफ द कमिटी ऑन द स्टेटस ऑफ वुमन इन इण्डिया, 1974, पृ. 92

25 नन्दा, बी.आर., इण्डियन वुमन फ्राम पर्दा टु मॉडर्निटी (1977), पृ. 128

26. जकारिया, रिनेसॉ इण्डिया, पृ. 4

27. देसाई, ए आर, द सोशल बैकग्राउण्ड ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म, पृ 275

28 रशब्रुक, विलियम्स, द ग्रेट मैन ऑफ इण्डिया, पृ 511

29. टुवर्ड्स इक्वालिटी, रिपोर्ट ऑफ द कमिटी ऑन द स्टेटस ऑफ वुमन इन इण्डिउया, 1974, पृ 53

30. वही, पृ 53

31. शुक्ला, आर.एल. (सम्पादित), आधुनिक भारत का इतिहास, पृ. 256

32. गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया : सोशल वेलफेयर इन इण्डिया, 1956, पृ 135

33. बेग, तारा अली, इण्डियाज वुमन पावर, पृ. 21

34 व्यास, के.सी , सोशल रिनेसां इन इण्डिया, पृ. 136

35 ओ मेले, मॉडर्न इण्डिया एण्ड वेस्ट, पृ. 456

36 अस्थाना, प्रतिमा, वुमेन मूवमेन्ट इन इण्डिया, पृ 106

37 टुवर्ड्स इक्वालिटी, रिपोर्ट ऑफ द कमिटी ऑन द स्टेटस ऑफ वुमन इन इण्डिया (1974), पृ 51

38. पाण्डेय, रेखा, उपाध्याय नीलम, वुमन इन इण्डिया पास्ट एण्ड प्रजेन्ट, पृ. 28

39. फारुखी, विमला, ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ वुमेन्स मूवमेन्ट इन इण्डिया (1996), पृ. 16

40. अस्थाना, प्रतिमा, वुमेन मूवमेन्ट इन इण्डिया, पृ 85

41 पाण्डेय, रेखा, उपाध्याय नीलम, ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ वुमेन्स मूवमेन्ट इन इण्डिया (1996) पृ 32

42. मरडोक, जॉन, ट्वेल्व इयर्स ऑफ इण्डियन प्रोग्रेस, पृ 36

43 शर्मा, डी.एस , हिन्दुइज्म थ्रू दि एजेज (1956), पृ 89

44. पाण्डेय रेखा, उपाध्याय नीलम, वुमेन इन इण्डिया, पास्ट एण्ड प्रजेन्ट, पृ. 30

45. व्यास, के.सी., सोशल रिनेसा इन इण्डिया, पृ 136

46. पाण्डेय रेखा, उपाध्याय नीलम, वुमेन इन इण्डिया, पास्ट एण्ड प्रजेन्ट, पृ. 31-32

47 मेनन, लक्ष्मी, वुमन इन इण्डिया एण्ड अब्रॉड, पृ 55

48 मित्रा, लक्ष्मी, एजुकेशन ऑफ वुमन इन इण्डिया, (1921-1966) पृ. 66

49 थामस, पी , इण्डियन वुमन थ्रू एजेज, पृ. 308

50. एडवर्ड, माइकल, ब्रिटिश इण्डिया, पृ. 105

51. मजुमदार, आर.सी., (सम्पादित), ब्रिटिश पैरामाउण्ट्सी एण्ड इण्डियन रिनेसॉ, भाग 2, पृ. 285

52. मजुमदार, हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेन्ट, भाग 1, पृ 295

53. वुड्स डिस्पैच, 1854, पैरा 3-4

54. मुखोपाध्याय, डॉ. श्रीधर नाथ, भारतीय शिक्षा का इतिहास (आधुनिक काल) पृ. 124

55. ताराचन्द, हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेन्ट, भाग 2, पृ. 442

56. मुखोपाध्याय, डा. श्रीधरनाथ, भारतीय शिक्षा का इतिहास (आधुनिक काल) पृ. 125

57 ताराचन्द, हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेन्ट, भाग 2, पृ. 444

58. मुखोपाध्याय, डा. श्रीधर नाथ, भारतीय शिक्षा का इतिहास (आधुनिक काल) पृ. 136

***

अध्याय –2

संक्रान्ति काल

(1900–1918)

पुरुष और स्त्री समाज निर्माण के दो परस्पर पूरक तत्व हैं, पर समाज संचालन में एक की सक्रियता और दूसरे की निष्क्रियता जीवन के सतत् प्रवाह में गतिरोध अवश्य पैदा न करे, तो भी उसे कुंठित अवश्य करती है। लिंग भेदभाव पर आधारित भारतीय पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को द्वितीय श्रेणी के नागरिक का दर्जा प्राप्त था। पुरुषों और स्त्रियों की विषमता ने इस कृत्रिम द्विविभाजन को सशक्त किया। पुरुषों के लिए सार्वजनिक क्षेत्र–जिसमें नौकरी करना, अर्थोपार्जन करना सम्मिलित था और स्त्रियों के लिए घरेलू क्षेत्र जिसमें बच्चों का लालन–पालन एवं गृह प्रबन्ध जैसे कार्य आते थे। निर्दिष्ट पुरुष क्षेत्र को प्रतिष्ठा और सत्ता प्राप्त हुई तथा स्त्री क्षेत्र को हेय दृष्टि व उपेक्षा प्राप्त हुई।[1] समाज मे स्त्री और पुरुष दोनों की स्थिति में जमीन आसमान का अन्तर था। दोनों के लिए नीति, नियम, कानून, मर्यादा, कर्तव्य और जीवन जीने के अलग–अलग सिद्धान्त थे। जो बातें पुरुषों के लिए ठीक और अच्छी मानी जाती थीं, स्त्री के लिए वही निषिद्ध थीं। पुरुषों का राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और नैतिक सभी क्षेत्रों पर एकाधिपत्य था। भारतीय नारी की हीनता तत्कालीन सामाजिक–आर्थिक संरचना में ही निहित थी।

तत्कालीन समाज की प्राथमिक इकाई 'परिवार' था जो मुख्य रूप से पितृसत्तात्मक था। पुरुष इस संस्था का मुखिया था। नारी की दोयम स्थिति का प्रारम्भ घर से ही हो जाता था जहाँ उसे लिंग भेदभाव, ऊँच–नीच का शिकार होना पड़ता था। पितृसत्तात्मक व्यवस्था का समाज में नारी की स्थिति से सीधा सम्बन्ध है। इस व्यवस्था मे पुत्र को अत्यधिक महत्व दिया जाता है, जबकि पुत्री को कोई स्थान प्राप्त नहीं था। पुत्री को 'माता–पिता के घर में अतिथि' और 'दूसरे की

सम्पत्ति' का दर्जा दिया जाता था। पुत्री का बहुत छोटी आयु में विवाह कर परिवारजन उसके प्रति अपने कर्तव्यों की इतिश्री मान लेते थे। अपने पति के घर में भी महिलाओं को कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। अपने पति के कुल से सामन्जस्य स्थापित करने में उसे अनेक त्रासदियों का शिकार होना पड़ता था। पति की मृत्यु के पश्चात् आर्थिक शक्तिहीनता और सम्पत्ति में कोई अधिकार न होने के कारण उसका जीवन नारकीय हो जाता था। जन-जातीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों में भी महिलाओं के सम्पत्ति में अधिकार बहुत सीमित थे।

उत्तर प्रदेश में संयुक्त परिवार प्रथा प्रचलित थी। इस व्यवस्था में परिवार के लगभग तीन पीढ़ियों के लोग एक साथ रहते थे। संयुक्त परिवार का एक संयुक्त बजट, आवास, सम्पत्ति, चूल्हा तथा व्यवसाय होता था। सयुक्त परिवार के जटिल संगठन को बनाये रखने के लिए उच्च व मध्यम वर्गीय महिलाओं को उनके मूलभूत अधिकारो से भी वंचित होना पड़ता था।[2] समाजशास्त्रियों व मानवशास्त्रियों के अनुसार जन-जातीय क्षेत्रों में संयुक्त परिवारों की अपेक्षा एकल परिवार अधिक प्रचलित थे। विवाह के बाद ही उनके चूल्हे अलग हो जाते थे, यद्यपि उनका घर परिवार के आवास के पास ही होता था।[3] अतः उच्च व मध्यम वर्गीय महिलाओं पर जो जटिल परम्परायें थोपी जाती थीं, वे जन-जातीय महिलाओं पर नहीं थीं। निम्न वर्गों में भी संयुक्त परिवार प्रथा प्रचलित नहीं थी। संयुक्त परिवार प्रथा मुख्य रूप से कृषि व व्यापार से जुड़े समुदायों और ऊँची जातियों में अधिक प्रचलित थी। संयुक्त परिवार में बहुत वर्षों से रहने वाली माताओं, बूढी व अनुभवी औरतों को परिवार में सम्मान प्राप्त था और निर्णय लेने में भी उनकी भूमिका होती थी। यहाँ तक कि 'भूमि, सम्पत्ति व व्यवसाय से जुड़े

प्रश्नों पर भी उनसे विचार-विमर्श किया जाता था, लेकिन अधिकांशतया किसी भी विषय पर निर्णय लेने में महिलाओं की भूमिका नगण्य ही होती थी। वे सिर्फ रसोई, खान-पान के विषय में निर्णय लेने में सक्रिय भूमिका निभाती थीं। घर, परिवार, व्यवसाय से जुडे सभी विषयों पर निर्णय लेने का एकाधिकार पुरुषों का था।[4] यहाँ तक कि स्वयं अपने विषय में भी निर्णय लेने का अधिकार महिलाओं के पास नहीं था। संयुक्त परिवार में महिला की स्थिति इस बात पर भी निर्भर करती थी कि समाज में उसके पति की क्या स्थिति है और परिवार की आर्थिक स्थिति में उसका योगदान कितना है। उच्च और मध्यम वर्ग में नवविवाहिता द्वारा दहेज में लाया गया सामान भी परिवार में उसकी स्थिति को सुनिश्चित करता था।[5]

विवाह संस्था आज से नहीं, शताब्दियों से नहीं, सहस्त्रों वर्ष पूर्व से स्थापित है। विवाह एक आवश्यक और महत्वपूर्ण विषय है। इस समय भी विवाह की आवश्यकता में कुछ न्यूनता नहीं हुई है। राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक शक्तिहीनता के साथ ही बीसवीं शताब्दी के स्त्री समाज को विरासत में अनेक समस्यायें भी प्राप्त हुईं, जिनमें से अधिकांश विवाह से ही सम्बन्धित थीं, जैसे—बाल-विवाह, बहुविवाह, अनमेल विवाह, दहेज, विधवाओं की हीन स्थिति, विधवा पुनर्विवाह आदि। हिन्दू समाज में जाति व्यवस्था कठोर थी। उत्तर प्रदेश भारतीय जाति व्यवस्था का गढ़ था। जाति व्यवस्था की कठोरता ने विवाह में जाति, गोत्र, कुल, धर्म की अनेक जटिलतायें खड़ी कर दी थीं।

उत्तर प्रदेश में प्रत्येक समुदाय की स्त्री अपने समाज में दूसरी श्रेणी की नागरिकता रखती थी। स्त्री अशिक्षा व पर्दे ने स्त्रियों को घर की चहारदीवारी में रहने को विवश कर दिया था। परिणामतः समाज में स्त्रियों की स्थिति दयनीय होने की प्रक्रिया तीव्रतर हुई। स्त्री की सारी अशक्तता का मूल यह था कि उसका जन्म ही नारी के रूप में हुआ है। वह लगभग सभी मानवीय अधिकारो से वंचित तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दया एवं करूणा की पात्र थी। जहाँ उच्च वर्गीय तथा मध्यम वर्गीय महिलाये मानसिक उत्पीड़न, दहेज, पर्दा, विधवा,सती, बाल विवाह जैसी कुप्रथाओं की शिकार थीं वहीं निम्न वर्गीय महिलायें पति की प्रताड़ना, शारीरिक श्रम तथा बलात्कार जैसी भयानक पाशविकता का शिकार थीं और इसे सहन करना इन महिलाओं की नियति थी। परिवार के पोषण के लिए बाहर से कमा कर लाने तथा उसे भोजन के रूप में परिवार के सामने प्रस्तुत करने तक के अन्तराल में निम्न वर्गीय तथा मजदूर महिलाओं को अनेक पारिवारिक तथा मानसिक त्रासदियों से गुजरना पडता था।

'चाँद' पत्रिका में निम्न जाति की स्त्रियों पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि "निम्न जाति की स्त्रियों को आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी। उन्हें विशेष परिस्थितियों में पूर्व पति का परित्याग कर किसी दूसरे स्वजातीय व्यक्ति को पति के रूप में ग्रहण करने का अवसर मिल जाता था । इस प्रकार उच्च वर्ण की हिन्दू स्त्रियों के समान शूद्र स्त्रियां इस बात के लिए बाध्य नहीं हैं कि वे हर प्रकार के दुःख, क्लेश और असुविधाओं को सहन करती हुई भी अयोग्य पति के नाम पर जीवन पर्यन्त अपनी आकांक्षाओं का बलिदान करती रहें । उच्च वर्ण की हिन्दू स्त्रियों में स्त्रियों को दूसरा विवाह करने का अधिकार नहीं था। जहाँ

विधवा को यह अधिकार नहीं था वहाँ सधवा के लिए तो एक पति का परित्याग करके दूसरा पति ग्रहण करने का प्रश्न ही नहीं था। कोई-कोई शूद्र स्त्रियां दूसरे पति का परित्याग करके तीसरे और तीसरे का परित्याग करके चौथा तक ग्रहण कर लेती थीं और समाज में उनका स्थान वैसा का वैसा ही बना रहता था। शूद्र स्त्रियों को जीविका सम्बन्धी स्वतन्त्रता भी प्राप्त थी। शूद्रों की कुछ ऐसी भी जातियाँ हैं जो मुख्य रूप से सेवावृत्ति से ही जीवन निर्वाह करती हैं। उदाहरण के लिए नाइयों ओर धोबियों को ही लें। इन दोनों ही जातियों के व्यवसायों के संचालन में जितना हाथ पुरूषों का होता था उतना ही स्त्रियों का भी होता था। नाइयों और धोबियों की तरह बारिनें और कहारिनें भी पति के समान ही बराबर सेवा टहल में लगी रहती थीं। अपने परिश्रम के बल पर वे प्रायः इतना उपार्जन कर लेती थीं कि वे अपने भोजन वस्त्र के लिए पति पर आश्रित नहीं थीं।"[6] विवाह सम्बन्धी तथा जीविका सम्बन्धी स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर भी वे स्वतन्त्र नहीं थीं और पुरूष प्रधान समाज में अनेक प्रकार के शारीरिक-मानसिक शोषण का शिकार थीं।

महात्मा गाँधी ने 1918 में महिलाओं की हीन स्थिति का विवेचन करते हुए 'यंग इण्डिया' में लिखा- "आज ऐसा माना जाता है कि स्त्रियों का एक मात्र कार्य है बच्चे पैदा करना, अपने पति की देखभाल करना और अन्य घरेलू कार्य करना...... न केवल स्त्रियां घरेलू दासता का शिकार हैं वरन जब वे मजदूरी के लिए बाहर जाती हैं तो पुरूषों से अधिक कार्य करने पर भी पुरूषों की अपेक्षा उन्हें कम मजदूरी मिलती है।"

उत्तर प्रदेश में बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों मे स्त्रियों की बदतर स्थिति का आकलन इस बात से लगाया जा सकता है कि इस दौरान स्त्रियों की मृत्यु-दर में अत्यधिक वृद्धि हुई । 1901 से 1911 तक, जब 100 पुरूष मरे, तब 118 स्त्रियाँ मृत्यु को प्राप्त हुईं। दस वर्ष में पुरूषों से करीब इक्कीस लाख अधिक स्त्रियों का मर जाना स्त्रियों की तत्कालीन सामाजिक दुर्दशा को ही प्रकट करता हैं।[7]

उत्तर प्रदेश में स्त्रियों की कमी जितनी 1911में हुई उतनी इससे पहले कभी नहीं हुई थी। जनगणना की रिपोर्ट में स्त्रियों की अधिक मृत्यु संख्या के अनेक कारण बताये गये हैं।[8] ये कारण उत्तर प्रदेश में नारी की स्थिति को स्पष्ट करते हैं-

1. प्लेग और अन्य बीमारियों का असर स्त्रियों पर अधिक होता है, जिसका कारण यह है कि पर्दे मे रहने से उन्हें स्वच्छ वायु नहीं मिलती जिसका उनके शारीरिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

2. बाल-विवाह की प्रथा। मुसलमानों में स्त्रियों के कम मरने का कारण यह है कि उनमें बड़ी उम्र में विवाह होते थे।

3. 1907-8 का दुर्भिक्ष ।

4. प्रसव काल की वेदना, उसके पूर्व का कष्ट और बाद की लापरवाही, मूर्ख दाइयों की अज्ञानता और कुप्रबन्ध के कारण प्रसव काल में अकाल मृत्यु।

5. समाज की बिगड़ी हुई दशा के कारण स्त्रियों की सामाजिक दुर्दशा।

सारांश यह है कि, जैसा कि रिपोर्ट में लिखा है, माता की गोद से लेकर श्मशान जाने के समय तक स्त्री को वे सभी व्याधियां सहनी पडती हैं जो विशेषकर उसी को सताती हैं– बचपन में उसकी ओर माता–पिता की उपेक्षा, अपरिपक्व अवस्था में उसका विवाह हो जाना, विवाह होने के अनन्तर बारम्बार प्रसव की पीड़ा और तत्सम्बन्धी आपदाओं को भोगना, बीमारी के लिए उचित ढंग से दवा और सेवा सुश्रूषा का अभाव, बुढ़ापे में अविश्रान्त रूप से घर के कार्य करना ये बातें स्त्रियों की अधिक मृत्यु संख्या की उत्तरदायी थीं।

नारी चेतना का प्रारम्भिक चरण

उन्नीसवीं शताब्दी–सांस्कृतिक जागरण के दृष्टिकोण से विद्रोह का युग स्वीकार की जा सकती है। नए आर्थिक पर्यावरण के उद्भव, नई राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना, आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा पद्धति और चिंतन शैलियों के प्रसार आदि के फलस्वरूप भारत में साधारण राष्ट्रीय और प्रजातांत्रिक जागरण हुआ। उसी की एक अभिव्यक्ति यह भी थी कि जिस मध्ययुगीन सामाजिक अधीनस्थता और प्रपीड़न से भारतीय नारी सदियों से त्रस्त थी उन्हें दूर करने का प्रयास किया गया।

उन्नीसवीं सदी के नवजागरण काल में प्रारम्भ हुए धार्मिक व सामाजिक सुधार आन्दोलनों के फलस्वरूप समाज में चेतना का संचार हुआ। व्यक्ति का जीवन के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। इस

दृष्टिकोण और नवीन मान्यताओं के विकास की प्रक्रिया बीसवीं शताब्दी में व्याप्त रही। महिलाओं की चेतना ने उन्हें इस स्थिति में पहुँचा दिया जहां वे अपनी दयनीय दशा से मुक्ति का आन्दोलन प्रारम्भ कर सकती थीं तथा पितृसत्तात्मक व्यवस्था के जटिल बन्धनों को तोडकर राष्ट्रीय धारा में स्वयं को समाहित करते हुए गौरव, पद, सम्मान तथा शक्ति प्राप्त कर सकती थीं।

बीसवीं शताब्दी में स्त्रियों की स्थिति में सुधार की आवश्यकता को देखते हुए स्त्रियों ने स्वयं अनेक संगठनों की स्थापना की जिनका प्रमुख उद्देश्य था स्त्रियों को शिक्षित करना और उनकी सामाजिक स्थिति में सुधार करना। यद्यपि यह अभिव्यक्ति सम्पूर्ण समाज की महिलाओं की नहीं थी तथापि उनमें से ही कुछ ने समान सामाजिक-राजनीतिक अधिकारों की इच्छा को सशक्त ढंग से व्यक्त किया तथा पितृसत्तात्मक संस्कृति के विरोध में अपना स्वर मुखरित किया। इस सदी के प्रथम 40-50 वर्षों को 'नारी जागरण का युग' कहा जा सकता है। इस अवधि में नारी ने अपनी सामाजिक पराधीनता और देश की राजनीतिक पराधीनता की बेड़ियां काट फेंकने के लिए संघर्ष किया और अपने लिए एक लक्ष्य, एक मार्ग निर्धारित किया।[10] बीसवीं सदी के स्त्री आन्दोलनों के विषय में ओ मेली ने लिखा है-"एक आध्यात्मिक आन्दोलन, जिसका प्रभाव समाज की आधारशिला पर पड़ा, जिसमें घर और स्त्री पुरूष के आपसी सम्बन्ध आते हैं।"[11]

'भारतीय राष्ट्रीय सोशल कांफ्रेंस' के अन्तर्गत 1903 में एक 'स्त्री शाखा' की स्थापना की गई और इसके तत्वावधान में 1909 में एक महिला सम्मेलन का आयोजन हुआ।[12] इस शाखा की सभा में

यह प्रस्ताव पारित हुआ कि स्त्रियों के लिए एक स्थायी संगठन की स्थापना की जाय, जिसके अन्तर्गत पूरे देश की महिलाओं का एक वार्षिक सम्मेलन हो,और उसमें महिलाओं के उद्धार के लिए प्रयास किये जाँय।[13] इसी परिपेक्ष्य में 1910 में इलाहाबाद में सरला देवी चौधरानी के नेतृत्व में एक सभा हुई।[14]

1910 में सरला देवी चौधरानी द्वारा एक अखिल भारतीय संगठन 'भारत स्त्री महामण्डल' की स्थापना हुई, जिसकी एक शाखा इलाहाबाद में स्थापित हुई। इस संगठन का उद्देश्य था सभी जाति, समुदाय व वर्गों की स्त्रियों को उनके सामान्य हितों के लिए संगठित करना, जिससे भारत में स्त्री जाति का नैतिक व भौतिक विकास हो सके। अपनी स्थापना के एक वर्ष के अन्दर ही संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश), पंजाब व बंगाल के कई शहरों में इसकी शाखायें स्थापित हुईं।[15]

सरला देवी चौधरानी ने स्त्रियों की निष्क्रियता को समाप्त करने के लिए पूरे देश का दौरा किया। सहारनपुर में लड़कियों के 'आर्य समाज स्कूल' में सभा को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा "भय से मुक्त होने का सर्वोत्तम उपाय ज्ञान है। अपने स्त्री समाज को ज्ञान दो। उन्हें भय से मुक्त करो और वे तुम्हारी नसों में साहस का संचार करेंगी। जागो! और तब तक विश्राम न करो जब तक अपने लक्ष्य को प्राप्त न कर लो।[16]"

1905 में बंगाल विभाजन की प्रतिक्रिया के रूप में 'स्वदेशी आन्दोलन' का सूत्रपात हुआ। इस आन्दोलन में स्त्रियों ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। राष्ट्रीय कोष में स्त्रियों ने बड़ी मात्रा में

अपने आभूषण दिये। स्वदेशी आन्दोलन में उत्तरप्रदेश की अपेक्षा बगाल, महाराष्ट्र व पंजाब में स्त्रियों की भागीदारी बहुत अधिक थी।

1905 में गोपाल कृष्ण गोखले द्वारा स्थापित 'भारत सेवक समाज' ऐसी पहली संस्था थी जिसने पीडित जनता, नारी शिक्षा तथा अन्य कल्याण कारी कार्यों के लिए ख्याति अर्जित की।[17]

1909 में रमाबाई रानाडे द्वारा 'सेवा सदन' की स्थापना हुई। इसके द्वारा स्त्रियों को एक ऐसा स्थान प्राप्त हुआ जहां उन्हें शिक्षित किया जाता था और उन्हें सामाजिक कार्यों के लिए तैयार किया जाता था।[18] एम0एस0 विद्वान, रमाबाई रानाडे की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं-"उनकी उपलब्धियां भारतीय नारी के जीवन में एक ऐसे स्वर्णिम संक्रांतिकाल को प्रदर्शित करती हैं जहाँ से हम अतीत के संकुचित विचारों से निकलकर उस आदर्शवादी विचार की ओर जाते हैं जहाँ स्त्री सभी क्षेत्रों में पुरूषों के साथ बराबर की भागीदार होगी। उन्हीं के प्रयासों से सेवा सदन एक संस्था से बढकर एक आन्दोलन हो गया।"[19] देश के विभिन्न भागों में फैली इसकी शाखाओं ने विशेषकर नर्सो एवं दाइयों के प्रशिक्षण, मातृत्व एवं शिशुहित की प्रोन्नति एवं विधवाओं के लिए काम खोजने में बहुमूल्य कार्य किया।"[19]

जी0के0 देवधर ने उत्तर प्रदेश में अकाल पीडितों की सहायता के लिए महिला कार्यकर्ताओं को संगठित करने के लिए 'सेवा सदन' की स्थापना की थी।[20] सेवासदन न केवल उस युग के आश्रमों की भांति महिलाओं, अनाथों तथा पीड़ितों का आश्रय-स्थल रहा अपितु उसने महिलाओं के आर्थिक जीवन में भी एक नया पृष्ठ खोला। स्त्रियों को नर्स तथा डाक्टरी की शिक्षा देकर भारतीय महिलाओं के लिए इस

व्यवसाय को भी प्रशस्त किया।[21] यह प्रथम आश्रम था जहा हिन्दू स्त्रियों के अतिरिक्त मुसलमान स्त्रियों को भी समान भाव से आश्रय प्राप्त हुआ ।

धोन्ढो केशव कर्वे ने एक 'विधवा-आश्रम' की स्थापना की तथा विधवाओं को स्वावलम्बी व आत्मनिर्भर बनाने के लिए, उन्हें विविध प्रकार की शिक्षा प्रदान करने हेतु एक स्कूल की स्थापना की।[22] इसकी सफलता ने विधवाओं की स्थिति में सुधार के लिए प्रगतिशील युवाओं को आन्दोलित किया। इसी स्कूल ने 1916 में महिला विश्वविद्यालय का रूप धारण कर लिया।[23] जकारिया के अनुसार यह भारत वर्ष का प्रथम स्वतन्त्र विश्वविद्यालय है जिसने बिना सरकारी सहायता के अपना अस्तित्व बनाये रखा।[24] इस विश्वविद्यालय ने समाज मे नारी शिक्षा की आवश्यकता का आदर्श रखा।

महिलाओं ने पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन भी प्रारम्भ किया। रामेश्वरी नेहरू ने हिन्दी में 'स्त्री दर्पण' नामक एक पत्रिका का सम्पादन किया। प्रयाग से प्रकाशित यह स्त्रियों की प्रथम पत्रिका थी।[25] इस पत्रिका ने उत्तर प्रदेश में स्त्रियों से सम्बन्धित अनेक प्रश्नों को उठाया और स्त्रियों में चेतना का संचार करने में उल्लेखनीय कार्य किया। रामेश्वरी नेहरू ने 1909 में इलाहाबाद में एक 'महिला समिति' की भी स्थापना की।

1910 से 1920 के मध्य स्त्रियों से सम्बन्धित सामाजिक संगठनों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई- जो महिला समिति, वुमेन्स क्लब और लेडीज सोसाइटी के नाम से जानी जाती थीं।[26] इसी प्रकार का एक 'पर्दा क्लब' 9 नवम्बर 1911 को प्रयाग में उत्तर प्रदेश के

लाट साहब की पत्नी मिसेज पोर्टर ने रानी राम प्रिया देवी के घर में खोला। इसमें हर जाति की स्त्रियां सभासद हो सकती थीं। क्लब का उद्देश्य आपस में मेल-जोल बढ़ाना था।[27]

अखिल भारतीय संगठनों के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश में प्रान्तीय स्तर की सामाजिक-राजनीतिक संस्थाएं स्थापित हुईं जिन्होंने स्त्रियों में सामाजिक और राजनीतिक चेतना का सचार किया। इस प्रकार की संस्थाओं में 'प्रयाग महिला समिति' की स्थापना से महत्वपूर्ण प्रारम्भिक प्रयास को मूर्त रूप मिला। 1909 में प्रयाग महिला समिति इलाहाबाद में स्थापित हुई। स्त्रियों में जागृति पैदा करना, भिन्न भिन्न जाति की स्त्रियों में परस्पर मेल-जोल बढाना, सामयिक विषयों पर विचार-विमर्श करना आदि इस संस्था के उद्देश्य थे । इस समिति के अधिवेशन समय-समय पर होते रहे जिनमें विभिन्न विषयों पर व्याख्यान होते थे।[28] 20 फरवरी 1914 को समिति का वार्षिक अधिवेशन क्रास्थवेट कन्या पाठशाला में श्रीमती स्वरूप रानी नेहरू की अध्यक्षता में हुआ। इस सभा में 200 महिलायें उपस्थित थीं। उसमें राजेश्वरी चक ने बाल विवाह, श्रीमती जोजेफ ने स्वास्थ्य, रक्षा और श्रीमती उमा नेहरू ने देश की उन्नति और श्रीमती राधा चरण ने सामाजिक कुरीतियों पर व्याख्यान दिये।[29] इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि प्रयाग की स्त्रियों में शिक्षा के प्रति रूचि जगाने, उनमें परस्पर मेल-जोल बढ़ाने और उन्हें जागरूक बनाने में प्रयाग महिला समिति का बड़ा हाथ रहा है। परन्तु धीरे-धीरे यह समिति शिथिल पड़ती गयी और 1918-1919 तक इसका पूरा-पूरा अन्त हो गया और बाद में रामेश्वरी नेहरू ने 1925 में उसे पुनर्जीवित किया।[30]

1917 में मद्रास में एक अखिल भारतीय महिला संगठन 'वुमेन्स इण्डिया एसोसिएशन' की स्थापना की गयी। इसकी स्थापना तीन यूरोपीय महिलाओं-डोरोथी जिनारजादसा, एनी बेसेन्ट और मार्गरेट कजिन्स ने की थी।[31] यह पहला ऐसा संगठन था जिसका उद्देश्य स्त्रियों में हर तरह से जागृति का संचार करना और उन्हें इस प्रकार से प्रशिक्षित करना था कि वे सार्वजनिक जीवन में अपने उत्तरदायित्वों को अपने कन्धों पर उठा सकें। इस संगठन का चरित्र असाम्प्रदायिक था और इसमें किसी भी जाति, धर्म को मानने वाली स्त्रियाँ सम्मिलित हो सकती थीं। संगठन ने एम.ई. कजिन्स के कुशल नेतृत्व में 'स्त्री मताधिकार आन्दोलन' चलाया और उसे प्राप्त करने में सफल भी हुईं।[32] इसकी शाखायें देश भर में स्थापित की गईं। 1922 में इसकी 43 शाखायें और 2300 सदस्य थे। 1927 में इसकी 80 शाखायें और 4000 सदस्य हो गये। सामाजिक सुधार कार्यक्रमों के अतिरिक्त इस संगठन का उद्देश्य स्त्रियों की स्थिति, शिक्षा और सामाजिक सुधारों के प्रश्न पर सरकारी नीतियों को प्रभावित करना था। इसके साथ ही वुमेन्स इण्डिया एसोसिएशन ने अनाथालयों, सुधार ग्रहों और मान्टेसरी स्कूलों की भी स्थापना की। 'स्त्री धर्म' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया और आपात काल के लिए धन एकत्रित किया ।[33] इस प्रकार वुमेन्स इण्डिया एसोसिएशन नारी की बदलती छवि का परिचायक था, जो बहुसंख्यक नारी की स्थिति में सुधार करने के लिए प्रतिबद्ध था।

सामाजिक अधिकारों के साथ स्त्रियाँ राजनीतिक अधिकारों के प्रति भी सजग हो गई थीं। 1918 में इंग्लैण्ड में एक कानून बनाकर स्त्रियों को मताधिकार प्रदान किया गया था। स्वाभाविक है कि महिलाओं को वोट देने का अधिकार दिलाने का आन्दोलन वहाँ कई

वर्षों से चल रहा था। भारत में जो माँग उठी वह इंग्लैण्ड में चल रहे आन्दोलन की प्रतिध्वनि प्रतीत होती है। 1917 में ही श्रीमती सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में महिलाओं का एक शिष्ट मण्डल भारत सचिव श्री मांटेग्यू से मिला और महिलाओं के मताधिकार की माँग की। राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय भाग लेने का भारतीय स्त्रियों का यह पहला प्रयत्न था।[34] इस शिष्ट मण्डल में मागरिट कजिन्स, एनी बेसेन्ट, डोरोथी जिनारज़ादसा, उमा नेहरू, रमाबाई रानाडे, अबला बोस आदि थीं।[35] इस शिष्ट मण्डल द्वारा मताधिकार के अतिरिक्त स्त्रियों के लिए श्रेष्ठ शिक्षा एवं स्वास्थ्य, प्रसूति सुविधाओं और आगामी सुधार बिल में उन सभी अधिकारों की माँग की गई जो पुरूषों को प्राप्त थे। मुस्लिम लीग तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने अधिवेशनों मे उनकी इन माँगों को अपना समर्थन प्रदान किया।[36]

1901 से 1918 की अवधि में स्त्री आन्दोलनों के प्रारम्भिक चरण का नेतृत्व एनी बेसेन्ट ओर सरोजिनी नायडू ने किया।[37] इनका कार्यक्षेत्र मुख्य रूप से उत्तरप्रदेश ही था अत यहा की महिलाओं पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। इनके भाषणों व लेखों का सुधारवादी विचारधारा पर भी गहरा प्रभाव पड़ा । एनी बेसेन्ट मूलतः एक आयरिश महिला थीं लेकिन हृदय व आत्मा से वे भारतीय ही थीं। उनका भारत आगमन 1893 में हुआ।[38] उनके क्रिया कलाप मुख्य रूप से शैक्षिक व सामाजिक सुधारों से जुड़े थे। 1907 में उन्होंने बनारस में बालिका विद्यालय की स्थापना की।[39] राजनीति के क्षेत्र में उनकी रुचि 1913 के बाद जागृत हुई।. पट्टाभिसीतारमैया ने उनके विषय में लिखा है—"श्रीमती बेसेन्ट ने 1914 में कांग्रेस में प्रवेश किया और वे अपने साथ कांग्रेस में नये विचार, नई प्रतिभायें, नये संसाधन और

कुल मिलाकर संगठन की एक नई विधा और नया दृष्टिकोण लाईं।"[40] होमरूल लीग की स्थापना से पूर्व उन्होने इलाहाबाद और लखनऊ सहित पूरे देश का भ्रमण किया और व्याख्यान दिये। होमरूल आन्दोलन का प्रारम्भ सितम्बर 1916 में हुआ और उसकी एक शाखा इलाहाबाद में दिसम्बर 1916 में स्थापित की गयी।[41] होमरूल लीग ने एक महिला शाखा भी स्थापित की जिससे स्त्रियां पुरुषों के हस्तक्षेप के बिना राजनीतिक प्रश्नों पर विचार कर सकें।[42] 1917 में वे अखिल भारतीय कांग्रेस की अध्यक्ष बनीं। कांग्रेस अध्यक्ष के प्रतिष्ठापूर्ण पद पर आसीन होने वाली वे प्रथम महिला थीं। इसी अधिवेशन में काग्रेस ने यह प्रस्ताव पास किया कि प्रान्तीय सरकारों की सभी निर्वाचित सस्थाओं में स्त्रियों को मताधिकार और शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रियो को वही अधिकार प्राप्त होने चाहिए जो पुरुषों को प्राप्त हैं।[43]

इस काल में एक अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तित्व सरोजनी नायडू का था जिन्होंने राष्ट्रीय नेताओं की पहली पंक्ति में स्थान प्राप्त किया और स्त्रियों को घर की चहारदीवारी से बाहर निकालने में विशिष्ट योगदान किया। 1906 से 1918 के इस प्रारम्भिक चरण मे उन्होंने स्त्रियों को अत्यधिक प्रभावित किया। उन्हें अधिक प्रसिद्धि 1925 में कांग्रेस अध्यक्ष और 1930-34 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन का नेतृत्व करने के कारण प्राप्त हुई।[44] प्रारम्भ में वे अपनी कविताओं की सफलता के कारण भी प्रसिद्ध हुईं, जिनका प्रकाशन 1905 और 1918 के बीच हुआ। सरोजिनी नायडू ऐसी पहली भारतीय महिला थीं, जिन्होंने राजनीति को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। दिसम्बर 1915 के बम्बई अधिवेशन में संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) के प्रतिनिधि के रूप में उन्होंने स्वशासन के प्रस्ताव का समर्थन किया।[45] उन्होंने मुस्लिम लीग

के लखनऊ अधिवेशन में भाग लिया और दोनों संगठनों के मतभेदों को दूर करने का प्रयास किया।[46] उनकी राजनीतिक सक्रियता ने अनेक महिलाओं को राजनीति में भाग लेने के लिए प्रेरित किया।

मुस्लिम स्त्रियों में चेतना का प्रारम्भिक चरण

शताब्दियों के शोषण के बाद बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों में मुसलमान स्त्रियों में भी चेतना के कुछ अंश दिखाई देने लगे थे। 1886 में स्थापित 'मोहम्डन एजुकेशनल कान्फ्रेंस' ने 1888 में स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पारित किया। 1903 में स्त्रियों ने इसमें भाग लेना आरम्भ किया। इस संगठन की स्त्री शाखा के सचिव शेख़ अब्दुल्ला ने 1904 में स्त्रियों से सम्बन्धित एक उर्दू पत्रिका का प्रकाशन किया। इस पत्रिका के द्वारा स्त्री शिक्षा का प्रचार तथा पर्दा प्रथा का विरोध किया गया और स्त्रियों से सम्बन्धित अन्य मुद्दों को उठाया गया।[47]

1900 से मुस्लिम स्त्रियों की नवीन आवश्यकताओं को देखते हुए पूरे भारत में पर्दा क्लबों की स्थापना हुई। पहली बार परिवार में सिमटी औरतों को एक नया मंच प्राप्त हुआ, जहाँ वे एक साथ बैठकर सामान्य मुद्दों पर विचार-विमर्श कर सकती थीं। ये महिलायें सामान्यतः ऐसे परिवारों से सम्बन्धित थीं जो पाश्चात्य शिक्षा और उदीयमान राष्ट्रीय आन्दोलन में संलग्न थे। इन्हें अपने परिवार का समर्थन व प्रोत्साहन भी प्राप्त था।[48]

1905 में अलीगढ़ में अतिया बेगम द्वारा 'मुस्लिम लेडीज कांफ्रेंस' का गठन किया गया।[49] 1905 में ही 'ऑल इण्डिया मुस्लिम

एजुकेशनल कांफ्रेंस' में मौलाना अल्ताफ हुसैन हाली ने अपनी सशक्त शायरी 'चुप की दाद' में स्त्रियों की जबरदस्त पैरवी की।[50] पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त युवा मुसलमानों ने स्त्रियों के उत्थान के लिए स्त्री शिक्षा को महत्वपूर्ण माना जो इस बात से स्पष्ट होता है कि मोहम्मडन एजुकेशनल कांफ्रेंस ने सर सैयद के शिष्य शेख मुहम्मद अब्दुल्ला के नेतृत्व में 1906 में मुसलमान लड़कियों के लिए पहला विद्यालय अलीगढ़ में खोला।[51] शेख और उनकी पत्नी को रूढिवादी तत्वों द्वारा अलीगढ़ में तीव्र विरोध का सामना करना पड़ा। शेख को सरोजिनी नायडू, बेगम अब्बास तैयब जी, लेडी अब्दुल्ला, लेडी अब्दुल्ला सुहरावर्दी, लेडी शफी, नज़र सज्ज़ाद हैदर, जोहरा अतिया फैज़ी और भोपाल की बेगम नवाब सुल्तान जहाँ का समर्थन व सहयोग प्राप्त हुआ।[52]

मुसलमान स्त्रियों की जागृति प्रशंसनीय थी। शिक्षा प्राप्त कर कुछ महिलाओं ने साहित्य के क्षेत्र में भी प्रवेश किया। 1907 में अलीगढ की जुबैदा खातून शेखानिया परिपक्व व प्रभावी कवितायें लिख रही थीं। इन कविताओं में राष्ट्रीयं व अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर उनकी गहरी समझ व पकड़ स्पष्टतया परिलक्षित थी।[53]

बीसवीं सदी के प्रारम्भ में उत्तर भारत में मुसलमानों की जागृति के प्रमुख केन्द्र अलीगढ़ और लाहौर थे। 1907 में बेगम मुहम्मद शफी द्वारा लाहौर में 'अंजुमन-ए-ख्वातीन इस्लाम' नामक संगठन की स्थापना की गई।[54] मुसलमान स्त्रियों में चेतना का संचार करने के लिए और समाज के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने के लिए अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी प्रारम्भ हुआ। 1908 में शेख अब्दुल्ला ने स्त्रियों की एक मासिक पत्रिका 'खातून' का प्रकाशन किया,

जिसमें उन्होंने पर्दा–प्रथा की समाप्ति की सशक्त वकालत की। इसी वर्ष अलामा रशीदुल ख़ैरी ने दिल्ली में 'इस्मत' नामक प्रसिद्ध पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया।[55] विभिन्न शहरों से अन्य पत्रिकायें भी प्रकाश में आईं।

1914 में भोपाल की बेगम ने मुस्लिम महिलाओं के लिए एक अखिल भारतीय संगठन की आवश्यकता को देखते हुए अलीगढ़ में एक सभा बुलाई और 'ऑल इण्डिया मुस्लिम लेडीज कान्फ्रेंस' की स्थापना की गई। भोपाल की बेगम अध्यक्ष और नफीस बेगम इस कान्फ्रेंस की सचिव निर्वाचित हुईं।[56] इस कांफ्रेंस ने अनेक मुस्लिम महिलाओं को आकर्षित किया। इसकी सभायें देश के विभिन्न भागों में की गईं। इस संगठन का उद्देश्य मुस्लिम स्त्रियों की स्थिति में सुधार करना था। इस सन्दर्भ में स्त्री शिक्षा के पक्ष में और पर्दा प्रथा के विरोध में प्रस्ताव पारित किये गये। 1917 में इसका लाहौर अधिवेशन अब्रू बेगम की अध्यक्षता में हुआ जिसमें बेगम शाहनवाज़ ने मुस्लिम समाज की एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या बहु विवाह के विरोध में प्रस्ताव रखा, जिसे सर्वसम्मति से पास कर दिया गया। इस प्रस्ताव का रूढ़िवादी मुसलमानों ने तीव्र विरोध किया।[57]

बीसवीं सदी के प्रथम दो दशकों में विचारों में गहरा अन्तर्विरोध व्याप्त था। एक ओर जहाँ उदारवादी पक्ष स्त्रियों की स्थिति में सुधार लाने के लिए कुप्रथाओं का विरोध कर रहे थे, वहीं रूढ़िवादी पक्ष इन सुधारों का विरोध कर रहे थे। मुस्लिम स्त्रियों में जागरुकता आने लगी थी। वे भी अपनी दयनीय स्थिति में सुधार लाने के लिए जागरुक हो गयी थीं। लेकिन सामान्यतया मुस्लिम स्त्रियों की स्थिति

शोचनीय ही बनी थी। 'चाँद' पत्रिका में मुस्लिम स्त्रियों की स्थिति को व्यक्त करते हुए लिखा गया—"समाज में मुस्लिम स्त्रियों की अवस्था अच्छी नहीं है। वे बेचारी बिना आलोक देखे हुए एक घर में जन्म लेती हैं और बिना सूर्यदर्शन के दूसरे घर में अन्त को प्राप्त होती हैं। संसार कहाँ जा रहा है, समय में कैसे परिवर्तन हो चुके, यह सब उनके लिए एक रहस्य है। बाहर के ज्ञान के लिए क्या कहा जाये, जब उन्हें सांस लेने के लिए साफ हवा मिलना भी कठिन है।"[58]

शैक्षिक स्थिति

विचार और विवेचना, अन्वेषण और गवेषणा करने पर मालूम होता है कि भारत के अधःपतन के आनुसंगिक अनेक कारणों के अतिरिक्त एक प्रधान कारण स्त्री शिक्षा का अभाव, उपेक्षा, शोषण और अवहेलना है। भारत में शिक्षा की स्थिति पर विचार व्यक्त करते हुए लार्ड कर्जन ने कहा कि—"पांच में से चार गांवों में कोई स्कूल नहीं है। चार में से तीन बालकों को कोई शिक्षा नहीं मिलती और एक हजार बालिकाओं में केवल सात ही लिखना-पढना जानती थीं।"[59]

बीसवीं सदी के प्रथम दो दशकों में शिक्षा का विकास अत्यधिक मन्द रहा और स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में तो यह न के बराबर था।[60]

जनगणना वर्ष	भारत की कुल जनसंख्या में साक्षर जनसंख्या का प्रतिशत	साक्षर पुरुष जनसंख्या का प्रतिशत	साक्षर महिला जनसंख्या का प्रतिशत
1901	5.35	9.83	0 69
1911	5.92	10.56	1 05
1921	7.16	12.12	1.81

तालिका के अनुसार 1901 में भारत की कुल जनसख्या में से मात्र 5.35 प्रतिशत जनसंख्या ही साक्षर थी और शिक्षित महिला जनसंख्या का प्रतिशत मात्र 0.69 प्रतिशत ही था। उत्तर प्रदेश में साक्षरता की स्थिति और अधिक खराब थी।[61]

जनगणना वर्ष	उत्तर प्रदेश में साक्षरता का प्रतिशत	पुरुष साक्षरता का प्रतिशत	महिला साक्षरता का प्रतिशत
1901	3.55	6.59	0.23
1911	3.88	6.87	0.56
1921	4.20	7.34	0.69

तालिका से स्पष्ट है कि 1901 में उत्तर प्रदेश (संयुक्त प्रान्त) की कुल आबादी का मात्र 3.55 प्रतिशत ही शिक्षित था। 1921 में यह बढ़कर 4.20 प्रतिशत हो गया। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की स्थिति और अधिक खराब थी। 1901 में स्त्रियों की कुल आबादी का मात्र 0 23 प्रतिशत ही शिक्षित था अर्थात् उत्तर प्रदेश की स्त्री आबादी का 99.79 प्रतिशत पूर्ण रूप से अशिक्षित था और जिन स्त्रियों को शिक्षा दी भी जाती थी उसका उद्देश्य मात्र यह था कि उन्हें पति की तथा घर के और लोगों की सेवा करने में सुविधा हो, अर्थात् वे मूर्ख गुलामों से कुछ शिक्षित गुलामों में परिणत हो जायें, पर रहें दासी ही।[62]

भारत में शिक्षा के प्रयास के लिए समाज-सुधारकों सहित सरकार ने प्रयास आरम्भ कर दिये थे। शिक्षा के विकास के लिए लार्ड कर्जन ने 11 मार्च, 1904 को एक सरकारी प्रस्ताव के रूप मे अपनी शिक्षा नीति रखी।[63] 1905 में उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा हेतु भारतीय सज्जनों की एक समिति बनी।[64] जिसका मुख्य उद्देश्य स्त्री शिक्षा की उन्नति के लिए सरकार को सुझाव देना था। प्राथमिक शिक्षा के प्रचार के लिए 1906 से श्री गोपाल कृष्ण गोखले के नेतृत्व में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की मांग प्रारम्भ हो गई। केन्द्रीय सरकार से लेकर स्थानीय सरकार तक माध्यमिक शिक्षा के विकास के लिए किये गये समस्त सुधारों का अवलोकन करने के लिए 1907 में 'नैनीताल सम्मेलन' आयोजित किया गया।[65] 1910 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस व मुस्लिम लीग ने अपने इलाहाबाद व नागपुर के अधिवेशनों में अनिवार्य निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा प्रारम्भ किये जाने के लिए प्रस्ताव पारित किया।

फरवरी 1911 में भारतीय शिक्षा शास्त्रियों का एक सम्मेलन इलाहाबाद में हुआ,[66] जिसका उद्देश्य प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के प्रसार और गुणात्मक उन्नति के लिए सरकार को सलाह देना था। 1913 में सरकार के द्वारा पुनः शिक्षा नीति घोषित की गई। 1913-14 तक उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा का विकास अन्य प्रान्तों की अपेक्षा बहुत कम था।[67]

प्रदेश	प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने वाली बालिकाओं की सख्या	स्कूल
उत्तर प्रदेश	46693	1067
बंगाल	210137	7058
मद्रास	248214	1443
बम्बई	140210	1271
पंजाब	37715	803

माध्यमिक शिक्षा में भी अन्य प्रान्तों की अपेक्षा बालिकाओं की संख्या कम थी—

प्रदेश	बालिकाओं की संख्या	स्कूलों की सख्या
उत्तर प्रदेश	8290	86
बंगाल	10614	86
मद्रास	8761	87
बम्बई	10201	69
पंजाब	8345	64

कॉलेज स्तर तक इनी-गिनी लड़कियाँ ही शिक्षा प्राप्त कर पाती थीं। सन् 1913-14 में उत्तर प्रदेश में कॉलेज में पढने वाली लड़कियों की संख्या मात्र 66 थी।

सरकार को स्त्री शिक्षा के पिछडेपन से परिचित कराने के लिए 12 अक्टूबर 1915 को श्रीमती फासेट वेटिड की अध्यक्षता में एक प्रतिनिधि मण्डल भारत के राज्य सचिव से मिला व एक जाँच समिति नियुक्त करने की माँग की।[68] 22 जनवरी, 1917 को दिल्ली में शिक्षा निदेशकों का एक सम्मेलन बुलाया गया, जिसमें उत्तर प्रदेश के श्री डी. ला. फोत्सी भी सम्मिलित हुए। सम्मेलन में वायसराय ने स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में विचार करते हुए कहा—"सामाजिक कुरीतियाँ ही स्त्री शिक्षा

के लिए बाधक हैं और स्त्रियों व पुरुषों मे बढती असमानता ही समस्त अवनति की मूल जड है। यह अच्छा नहीं है कि स्त्रियाँ शिक्षा के क्षेत्र में पुरुषों से पीछे रहें। इसलिए जनता का दृष्टिकोण बदलना चाहिए व शिक्षित वर्ग को स्त्री शिक्षा में सहयोग देना चाहिए।"[69]

मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट (1918) ने स्त्री शिक्षा को ध्यान में रखा। रिपोर्ट के अनुसार—"सामाजिक रीतिरिवाज स्त्री शिक्षा के रास्ते में कठिनाइयों को बढ़ाते हैं। इस प्रश्न पर लोगों का दृष्टिकोण धीरे-धीरे बदल रहा है। मध्यम वर्ग के शिक्षित लोग अपनी पत्नियों को शिक्षित करने के लिए उद्यत हो रहे हैं। जब तक शिक्षा किसी एक वर्ग को ही दी जायेगी तब तक देश का सामाजिक स्वरूप नहीं बदलेगा और इससे राजनीतिक प्रगति में भी बाधा आयेगी।"[70]

बीसवीं सदी के प्रथम दो दशकों में नारी के सामाजिक तथा पारिवारिक जीवन की विषमताओं को लेकर जो भी प्रयत्न हुए, उनमें नारी शिक्षा सबसे महत्वपूर्ण प्रयास था। समाज का रूढ़िवादी वर्ग नारी-शिक्षा का समर्थक नहीं था। एक वर्ग केवल प्रारम्भिक शिक्षा देकर स्त्री चेतना की इतिश्री करना चाहता था। वह इसके आगे स्कूलों और कॉलेजों में स्त्रियों की शिक्षा का विरोधी था। जब रूढ़िवादी वर्ग की मनोवृत्ति के प्रतिकूल लड़कियों के लिए स्कूल और कॉलेज स्थापित किये जाने लगे, तो उनका इस वर्ग ने सशक्त विरोध किया। सुधारवादी भी अपने प्रयासों में सक्रिय रहे। अतः शनैः-शनैः नारी शिक्षा की योजनायें सार्थक तथा व्यापक होती चली गईं।

औपन्यासिक साहित्य में नारी

समाज की वस्तु स्थिति का सही ज्ञान प्राप्त करने के लिए समकालीन साहित्य का अध्ययन व विवेचन करना अत्यधिक आवश्यक है क्योंकि साहित्य-समाज का निरन्तर व सर्वाधिक विश्वस्त संगी होता है। वह जीवन के किसी पहलू को अछूता नहीं छोड़ता है। इस युग के उपन्यासों मे नारी की दयनीय स्थिति तथा नारीत्व की रूपरेखा को निर्धारित करने वाली नवीन शक्तियों के उदय और प्रभाव की विस्तृत समीक्षा उपलब्ध होती है।

इस युग के उपन्यासकार नारी जीवन के विविध पक्षों को स्पष्ट करते हुए उसकी समस्याओं से साक्षात्कार कराने में सक्षम हैं, परन्तु वे रूढ़िवादी परम्पराओं के घेरे में बने रहने के प्रति भी अपनी आसक्ति नहीं त्याग पाते। इस काल के प्राय. सभी उपन्यास लेखक पर्दा प्रथा के प्रति अपनी घोर आसक्ति प्रगट करते हैं। पं. लज्जा राम शर्मा मेहता, किशोरी लाल गोस्वामी आदि सभी के विषय में यह कथन सत्य है। इनके अनुसार 'लज्जा ही नारीं का आभूषण है।' मेहता जी के उपन्यास 'आदर्श हिन्दू' की प्रियबदन पर्दा प्रथा को स्वीकार करते हुए कहती है—"उनका सुख उन्हें ही मुबारिक रहे। हम पर्दे में रहने वाली पत्नियों को ऐसा सुख नहीं चाहिए। हम अपने घर के धन्धे में ही मग्न हैं।"[71] 'सुशील विधवा' में लेखक पर्दा प्रथा को ही स्त्री की सद्गति का सबसे बड़ा आधार मान लेता है। एक स्थान पर इसकी नायिका सुशीला स्त्रियों के नैतिक धरातल की दुर्बलता प्रदर्शित करते हुए कहती है—"मेरी समझ में पर्दा-प्रणाली अच्छी है। जो लोग पर्दा-प्रणाली की निन्दा करते हैं वे भूलते हैं, झख मारते हैं। पर्दे का प्रयोजन यह नहीं है कि स्त्रियों

को सात ताले में बन्द रखना चाहिए, इसका मतलब यही है कि उन्हें ऐसे कुकर्म करने का अवसर न देना चाहिए।"[72] मेहता जी पर्दा प्रथा की बुराई अपरोक्ष रूप से स्वीकार करते हुए भी रूढियो का मोह नहीं छोड सके। अनमेल विवाह, बहुपत्नी समस्या, विधवा जीवन, परित्यक्त जीवन सम्बन्धी समस्याओं पर भी उनके अंतर्विरोध स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं।

इस काल के मेहता, गोस्वामी आदि सभी लेखकों ने परम्परागत नारी आदर्श का दृढ़ता के साथ समर्थन किया है। ये नारी शिक्षा की नवीन रूपरेखा के सशक्त विरोधी भी थे। उन्हें यह तो मान्य था कि लड़कियों को घर में ही गृहकार्य, हिन्दी तथा संस्कृत की शिक्षा दी जाये, परन्तु उन्हें यह स्वीकार नहीं था कि लडकियाँ घर के बाहर पाठशालाओं में नवीन ढंग की शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेजी जाये। परन्तु हरिऔध जी के विचार अधिक रूढ़िवादी नहीं थे। अपने उपन्यासों में उन्होंने लडकियों की शिक्षा का समर्थन किया है—"वह लडका भला क्यों न होगा—माँ जिसकी पढ़ी लिखी होगी।"[73] हरिऔध जी सुशिक्षित नारी को एक सुसंगठित समाज की दृढ़ आधारशिला के रूप में स्वीकार करते हैं। बाबू बृजनन्दन सहाय भी नारी को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिए स्त्री शिक्षा का समर्थन करते हैं।[74] इस प्रकार नारी-शिक्षा को लेकर इन उपन्यासकारों के मतों में जो विभिन्नता दिखाई पडती है, उसे हम पुराने और नये दृष्टिकोण के उस संघर्ष की स्थिति के रूप में स्वीकार कर सकते हैं, जो बीसवीं सदी के प्रारम्भ में जीवन के विविध क्षेत्रों में दिखाई पड़ता था।

ठाकुर जगमोहन सिंह का 'श्यामा स्वप्न' उपन्यास तथा प. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का 'ठेठ हिन्दी का ठाट' उपन्यास सामाजिक चेतना की दृष्टि से महत्वपूर्ण रचनायें हैं। विवाह और प्रेम के सम्बन्ध में जो रूढ़िवादी समाज के कड़े बन्धन थे, जगमोहन सिंह उन बन्धनोंको तोड़कर स्वच्छन्द प्रेम का प्रतिपादन करते हैं। शिक्षित मध्यम वर्ग रूढ़िवादी समाज से मुक्त होने का प्रयत्न करता दृष्टिगत होता है। हरिऔध जी ने अपने उपन्यास में अनमेल विवाह की समस्या को उजागर किया है। इस प्रकार परस्पर अंतर्विरोध बीसवीं सदी के प्रथम दो दशक के साहित्य लेखन में विद्यमान है। नारी जीवन की समस्याओं पर गम्भीरता से विचार किया जाने लगा था, परन्तु इस काल के लेखक अपनी परम्परागत रूढ़िवादी छवि के पूर्वाग्रह से मुक्त न हो सके थे। पुरातन और नूतन का द्वन्द अन्ततोगत्वा बना ही रहा।

उन्नीसवीं सदी की नारी-समस्याओं का समाधान इस काल में नहीं हुआ, किन्तु सामाजिक समस्याओं, स्त्री शिक्षा और भारतीय नारीत्व की रूपरेखा निर्धारित करने वाली नवीन दृष्टि और नवीन शक्तियों का उदय अवश्य हुआ। स्त्री शिक्षा के प्रसार से नवीन विचार उत्पन्न हुए और परवर्ती काल में स्त्रियों की छवि में बदलाव आया, जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका ग्राह्य, निश्चित और अनिवार्य हो सकी।

***

सन्दर्भ

1. रिपोर्ट ऑफ द कमिटी ऑन द स्टेटस ऑफ वुमन इन इण्डिया, दिल्ली 1947

2. टुर्वड्स इक्वालिटी, रिपोर्ट ऑफ द कमिटी ऑन द स्टेटस ऑफ वुमन इन इण्डिया, 1974, पृ. 58

3. वही

4. वही

5. वही

6. चाँद, अगस्त, 1940, पृ. 198–199

7. मर्यादा, फरवरी 1913, पृ. 259

8. वही, पृ. 260

9. देसाई, ए.आर., भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ. 219

10. वोहरा, आशा रानी, भारतीय नारी : दशा और दिशा, पृ. 8

11. ओ' मेली, मॉडर्न इण्डिया एण्ड द वेस्ट, पृ. 446

12. मजुमदार, आर.सी., (सम्पादित), हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इण्डियन पीपुल, भारतीय विद्याभवन, बम्बई खण्ड–XI, पृ 994

13. सारस्वती, एस., वुमेन इन पोलिटिकल लाइन इन इण्डिया, पृ. 8

14. मजुमदार, आर.सी., (सम्पादित), हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इण्डियन पीपुल, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, खण्ड XI,
पृ. 994

15. मॉडर्न रिव्यू, अक्टूबर, 1911, पृ 344, 349

16. होम पोलिटिकल कॉन्फीडेन्शियल प्रोसीडिंग्स, फाइल नं.–46–52, जनवरी, 1910

17. जकारिया, रिनेसां इण्डिया, पृ. 94

18. अस्थाना, प्रतिमा, वुमेन्स मूवमेन्ट इन इण्डिया, पृ. 86

19. विद्वान, एम.एस., रानाडे : हिज वाइफ्स रैमिनिर्सेस, पृ. 221

20. व्यास, के.सी., दि सोशल रिनेसां इन इण्डिया, पृ 142

21. नन्दा, बी.आर., इण्डियन वीमेन फ्राम पर्दा टू मॉडर्निटी, पृ. 134

22. देसाई, ए.आर., दि सोशल बैकग्राउण्ड ऑफ इंडियन नेशनलिज्म, पृ. 289

23. नन्दा, बी.आर., इंडियन वीमेन फ्राम पर्दा टू मॉडर्निटी, पृ. 168

24. वही, पृ. 174

25. मनोरमा, अक्टूबर 1926, पृ. 45

26. पाण्डेय रेखा, उपाध्याय नीलम, ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ वुमेंस मूवमेन्ट इन इण्डिया, पृ. 35

27. स्त्री दर्पण, दिसम्बर, 1911, पृ. 328

28. मनोरमा, अक्टूबर 1926, पृ. 45

29. स्त्री दर्पण, मार्च 1914, पृ. 194

30. मनोरमा, अक्टूबर 1926, पृ. 45

31. एवरेट, जॉन मैटसन, वुमन एण्ड सोशल चेन्ज इन इण्डिया,
पृ. 69

32. अस्थाना, प्रतिमा, वुमेन्स मूवमेन्ट इन इण्डिया, पृ. 88

33. एवरेट, जॉन मैटसन, वुमन एण्ड सोशल चेन्ज इन इण्डिया,
पृ. 72

34. वोहरा, आशा रानी, भारतीय नारी : दशा और दिशा, पृ. 14

35. राय, भारती, फ्राम द सीम्स ऑफ हिस्ट्री, पृ. 191

36. अस्थाना, प्रतिमा, वुमेन्स मूवमेन्ट इन इण्डिया, पृ. 11-12

37. एवरेट, जॉन मैटसन, वुमन एण्ड सोशल चेन्ज इन इण्डिया,
पृ. 82

38. विपिन चन्द्रा, भारत का स्वतन्त्रता संग्राम, पृ. 160

39. एवरेट, जॉन मैटसन, वुमन एण्ड सोशल चेन्ज इन इण्डिया,
पृ. 84

40. सीतारमैया, पट्टाभि, द हिस्ट्री ऑफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस, खण्ड-I, 1946, पृ. 119

41. होम पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट प्रोसीडिन्ग्स, फाइल न. 69, 1917 स्टेट आर्काइवल

42. बेसेन्ट, एनी, द फ्यूचर ऑफ इण्डियन पोलिटिक्स, पृ 91

43. सीतारमैया, पट्टाभि, द हिस्ट्री ऑफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस, खण्ड–I, 1946, पृ. 52

44. एवरेट, जॉन मैटसन, वुमन एण्ड सोशल चेन्ज इन इण्डिया,
पृ. 85

45. वही, पृ. 85

46. मॉडर्न रिव्यू, खण्ड 39, जनवरी–जून, 1926, पृ. 104

47. लतीफ, शाहिदा, मुस्लिम वुमन इन इण्डिया, पोलिटिकल एण्ड प्राइवेट रिआलिटीज; 1890'**S**–1980'**S**, पृ. 81

48. वही, पृ. 82

49. वही, पृ. 82

50. वोहरा, आशा रानी, भारतीय नारी : दशा और दिशा, पृ. 114

51. कैरोल चैपनिक मुखोपाध्याय एण्ड सूसन सीमोर (सम्पादित), वुमन, एजुकेशन एण्ड फैमिली स्ट्रक्चर इन इण्डिया, पृ. 41

52. जैन, देवकी, (सम्पादित), इण्डियन वुमेन, पृ. 197

53. वही, पृ. 196

54. लतीफ, शाहिदा, मुस्लिम वुमन इन इण्डिया : पोलिटिकल एण्ड प्राइवेट रिआलिटीज, पृ. 82

55. जैन, देवकी, (सम्पादित) इण्डियन वुमेन, पृ 197

56. लतीफ, शाहिदा, मुस्लिम वुमन इन इण्डिया . पोलिटिकल एण्ड प्राइवेट रिआलिटीज, पृ. 82

57. वही, पृ 82

58. चाँद, नवम्बर, 1937, पृ 144

59. प्रोग्रेस ऑफ इजुकेशन इन इण्डिया, 1897–98–1901–02

60. जनगणना आंकड़ों पर आधारित

61. जनगणना आंकड़ों पर आधारित

62. मर्यादा, मई, 1913, पृ. 54

63. रेसोल्यूशन ऑफ द गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया इन द होम डिपार्टमेन्ट, 11 मार्च 1904, पृ. 459

64. जनरल रिपोर्ट ऑन पब्लिक इन्स्ट्रक्शन, यूनाइटेड प्रोविन्स ऑफ आगरा एण्ड अवध–1906–07, पृ. 53

65. प्रोग्रेस ऑफ एजेकुशन इन इण्डिया, 1907-12, खण्ड-2,
पृ. 98

66. प्रोसीडिन्ग्स ऑफ द एजुकेशनल कान्फ्रेंस, फरवरी 1911, इलाहाबाद

67. स्त्री दर्पण, मार्च 1916, पृ. 178

68. प्रोग्रेस ऑफ एजुकेशन इन इण्डिया, 1912-17, खण्ड-८,
पृ. 26

69. द पाइनियर, जनवरी 24, 1917, पृ 6

70. मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट, 1918, भाग-2, पृ. 91

71. पं. लज्जा राम शर्मा मेहता, आदर्श हिन्दू (1904), पृ. 8

72. पं. लज्जा राम शर्मा मेहता, सुशील विधवा, 1907, पृ 116

73. हरिऔध, अयोध्या सिंह उपाध्याय, अधखिला फूल, पृ. 240

74. सहाय, बृज नन्दन, अरण्य बाला, 1914, पृ. 330।

***

अध्याय-3

नारी जागरण

(1919-1929)

बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में नारी चेतना दिन पर दिन विस्तृत होती जा रही थी। महिलायें अपने सामाजिक व राजनीतिक अधिकारों के प्रति सजग हो चुकी थीं। धीरे-धीरे सामाजिक समस्यायें राजनीतिक प्रश्न बनती जा रही थीं। श्रीमती सरोजिनी नायडू, एनी बेसेन्ट तथा श्रीमती हीराबाई ने ब्रिटिश सरकार के समक्ष 1919 में भारतीय नारी के लिए राजनीतिक अधिकारों की माँग प्रस्तुत की।[1] ब्रिटिश सरकार, जिसने स्वय अपने देश में नारी वर्ग को कई वर्षों तक राजनीतिक अधिकारों से वंचित रखा था, वह गुलाम भारत में नारी वर्ग के लिए समानाधिकार की कल्पना ही नहीं कर सकती थी। उसने प्रान्तीय धारा सभाओं पर यह प्रश्न छोड़ दिया, परन्तु देश शीघ्र ही नारी वर्ग को समानाधिकार प्रदान करने के लिए प्रेरित था। अतः सभी प्रान्तीय सभाओं ने शीघ्र ही महिलाओं को मत देने का अधिकार प्रदान किया। उत्तर प्रदेश (संयुक्त प्रान्त) ने महिलाओं को मत देने के अधिकार को सर्वसम्मति से करतल ध्वनि के साथ पारित किया।[2] यह घटना विश्व इतिहास की युगान्तरकारी घटना स्वीकार की गई, क्योंकि नारी को मताधिकार प्रदान करने के क्षेत्र में, सर्वसम्मति का विश्व में यह पहला उदाहरण था। प्रान्तीय सभा के एक सदस्य के अनुसार, "यह जानकर अत्यन्त सुख व संतोष प्राप्त होता है कि भारत जैसे देश में जहाँ पुरुषों पर यह आरोप लगाया जाता है कि वे स्त्रियों को अपनी सम्पत्ति समझते हैं, वहाँ की स्त्रियों की राजनीतिक प्रगति इंग्लैण्ड की स्त्रियों की अपेक्षा कहीं अधिक तेज है।"[3] मत देने का अधिकार सम्पत्ति पर आधारित होने के कारण पुरुषों की अपेक्षा केवल पांच प्रतिशत स्त्रियाँ ही इस अधिकार का प्रयोग कर सकती थीं क्योंकि सामान्यतया परिवार की सम्पत्ति में स्त्रियों का कोई स्वतन्त्र हिस्सा नहीं था। 1923 के चुनावों में मद्रास, बम्बई और

संयुक्त-प्रान्त (उत्तर प्रदेश) की स्त्रियों को मताधिकार प्रदान किया गया। निम्न तालिका के अनुसार 1923 के चुनाव में पडे कुल मतों में स्त्रियों द्वारा दिये गये मतों का प्रतिशत बहुत निम्न था।[4] फिर भी, यह नारी जागरण का सूर्योदय काल था।

प्रान्त	प्रान्तीय सभा		केन्द्रीय सभा	
	पुरुष %	महिला %	पुरुष %	महिला %
मद्रास	38.0	10.0	42.7	10.4
बम्बई	49.5	18.0	38.6	7 2
संयुक्त प्रान्त	43.5	2.5	45.2	अप्राप्त

1926 के चुनावों में पांच प्रान्तों की स्त्रियों को मताधिकार के अधिकार प्राप्त हुए। मद्रास, बम्बई तथा संयुक्त प्रान्त में 1923 के चुनावों की अपेक्षा 1926 में हुए चुनावों में स्त्रियों के मतोंके प्रतिशत में वृद्धि हुई।

निम्न तालिका में 1926 के चुनावों में पड़े मतों को प्रतिशत में प्रदर्शित किया गया है।[5]

प्रान्त	प्रान्तीय सभा		केन्द्रीय सभा	
	पुरुष %	महिला %	पुरुष %	महिला %
मद्रास	48 3	18.5	18.4	22 1
बम्बई	40.6	20.1	46.2	12 2
सयुक्त प्रान्त	50.2	6.3	51.8	44 5
पंजाब	51.4	9.8	62.8	12.3

उत्तर प्रदेश की महिलायें अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति सचेत हो रही थीं। यद्यपि यह प्रगति धीमी थी, तथापि इसने उत्तर प्रदेश की स्त्रियों में एक नयी चेतना का संचार किया और उन्हें दिशा प्रदान की।

राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं की भागीदारी

1919 से 1947 का काल खण्ड राष्ट्रीय आन्दोलन का काल था। पूरा भारत राष्ट्रीयता की भावना से आन्दोलित था। नारी समाज भी इससे अछूता नहीं था। राष्ट्रीय आन्दोलन के बढ़ते ज्वार के कारण नारी का घर की चहारदीवारी के अन्दर रहना संभव नहीं था। राष्ट्रीय आन्दोलन ने जहाँ राष्ट्रीय जीवन में नवचेतना का उदय किया वहाँ उसने नारी समाज में भी नवजीवन और जागृति पैदा की। राष्ट्रीय आन्दोलन भारतीय नारी के लिए केवल ब्रिटिश दासता से मुक्ति का

आन्दोलन ही नहीं था अपितु स्वयं उसकी मुक्ति का आन्दोलन भी था। पं. जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में, "स्त्रियों के लिए आजादी की पुकार हमेशा दुहरी माने (अर्थ) रखती थी और इस बात में कोई शक नहीं कि जिस जोश और जिस दृढ़ता के साथ वे आजादी की लड़ाई में कूदीं, उनका मूल उस धुंधली और लगभग अज्ञात लेकिन फिर भी उस उत्कट आकांक्षा में था, जो उनके मन में घर की गुलामी से अपने को मुक्त करने के लिए बसी हुई थी। मामूली तौर पर लड़कियों और स्त्रियों ने हमारी लड़ाई में क्रियात्मक भाग, अपने पिताओं, भाइयों या पतियों की इच्छा के विरुद्ध, ही लिया था। किसी भी हालत में उन्हें अपने घर के पुरुषों से पूरा सहयोग नहीं मिला था।"[6] वस्तुत यह नारी की चेतना का प्रारम्भिक काल था। इससे पूर्व नारी पुरुष की दया, करुणा तथा मानवीय दृष्टि पर आश्रित थी। स्वयं अपने अधिकारों के प्रति वह सजग नहीं थी और उन्हें प्राप्त करने का आत्मविश्वास वह प्राप्त न कर सकी थी। यही कारण था कि नारी की स्थिति में सुधार के लिए चलाये गये सभी प्रारम्भिक आन्दोलनों का सूत्रपात पुरुषों के द्वारा ही हुआ था।

1919 में एनी बेसेंट ने होमरूल आन्दोलन की शक्ति का मुख्य कारण स्त्रियों को बतलाते हुए कहा था कि, "स्त्रियों के उसमें बहुत बड़ी संख्या में भाग लेने, उसके प्रचार में सहायता करने, स्त्रियोचित अद्‌भुत वीरता दिखाने, कष्ट सहने और त्याग करने के कारण आन्दोलन की शक्ति दस गुनी अधिक बढ़ गई थी।"[7]

1919 के पश्चात् भारतीय राजनीति में स्त्रियों का तीव्र गति से प्रवेश भारतीय इतिहास की युगान्तरकारी घटना है। भारतीय

राजनीति में गांधीजी के प्रवेश ने स्त्रियों को अत्यधिक आन्दोलित किया। गांधी जी स्त्री-पुरुष में भेद दृष्टि नहीं रखते थे। उनकी दृष्टि में स्त्री-पुरुष एक दूसरे के पूरक थे। नारी तथा पुरुष की समानता की घोषणा सम्भवतः अन्य किसी दर्शन में उतनी उच्च अभिव्यक्ति नहीं प्राप्त कर सकी, जितनी सत्याग्रह तथा अहिंसा के सिद्धान्तों में प्रकट हुई। गांधी जी की यह सबसे बड़ी क्रान्तिकारी देन रही है। उनका मानना था कि "नारी को अबला कहना, यह उसके प्रति पुरुषों का अन्याय है। यदि अहिंसा हमारे मूल्यांकन की कसौटी है तो निश्चय ही भविष्य का निर्माण स्त्रियों को करना है अर्थात् हमारा भविष्य स्त्रियों के हाथ में है।'[8]

गांधी जी स्त्रियों को राष्ट्र के जीवन का आवश्यक अंग मानते थे। उनका मानना था कि कोई भी आन्दोलन तब तक राष्ट्रीय स्वरूप प्राप्त नहीं कर सकता जब तक कि उसकी आधी आबादी (भारतीय नारी) इस संघर्ष के समय अलग-थलग रहेगी। उनका विश्वास था कि हमारे कई आन्दोलन स्त्रियों की दुर्दशा के कारण ही अधूरे समाप्त हो गये।[9]

गांधी जी के असहयोग और सविनय अवज्ञा आन्दोलन की महत्वपूर्ण शक्ति स्त्रियाँ रही हैं। उनकी अहिंसात्मक राजनीतिक युद्ध पद्धति की प्रकृति भारतीय नारी के लिए उपयुक्त थी। यही कारण है कि गांधी जी के नेतृत्व में पहली बार स्त्रियाँ बड़ी संख्या में घर की सीमाएं लांघ कर स्वाधीनता संग्राम में भाग ले सकीं। राष्ट्रीय आन्दोलन में बहिष्कार का मोर्चा नारी वर्ग को सौंप दिया गया था।[10]

असहयोग आन्दोलन को गति प्रदान करने के लिए नारी वर्ग का आह्वान करते हुए उन्होंने कहा—"मैं तुमसे बड़ी आशायें करता हूँ। मुझे आशा है कि महिलायें इस आन्दोलन में पूरा भाग लेंगी। सरकार हमारे हर सैनिक को पकड़े तो पकड ले, मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। हमारा कार्य इतना आसान है कि महिलायें इसे बिना किसी कठिनाई के आगे बढ़ा सकती हैं।"[11] असहयोग आन्दोलन को प्रारम्भ करने से पूर्व ही गांधी जी ने घोषणा कर दी थी कि अहिंसक संघर्ष के लिए स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक उपयुक्त हैं। गाँधी जी ने कार्यक्रम के उस अंग पर बल दिया जिसमें महिलायें घर के बाहर निकले बिना भी अपना सहयोग दे सकती थीं। इसलिए उन्होंने स्वदेशी के कार्यक्रम को महिलाओं के लिए उपयुक्त माना। उन्हें स्वदेशी अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया गया। धीरे-धीरे स्वदेशी आर्थिक स्वतन्त्रता का और चर्खा आर्थिक आत्म निर्भरता का प्रतीक बन गया। बहिष्कार का मोर्चा स्त्रियों को सौंप दिया गया। विदेशी कपडे तथा शराब की दूकानों पर धरना देने (पिकेटिंग) का भार स्त्रियों पर था। वस्तुत· बहिष्कार व स्वदेशी कांग्रेस के स्वातन्त्र्य आन्दोलन के दो ठोस कार्यक्रम थे, जिनके बल पर भारत ब्रिटेन के आर्थिक हितों पर चोट पहुँचा सकता था। इस उत्तरदायित्व का भार महिलाओं पर था।

गांधी जी ने सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश का भ्रमण कर जगह-जगह महिलाओं और पुरुषों की सभाओं को सम्बोधित करते हुए महिलाओं से अनुरोध किया कि—"वे आजादी की लडाई में अपना फर्ज निभाने में संकोच न करें। आप स्वयं स्वदेशी अपनाकर स्वतंत्र भारत के निर्माण में अपना प्रबल एव प्रभावकारी सहयोग दें क्योंकि स्वदेशी स्वराज्य प्राप्त करने का अमोघ उपाय है। उसके द्वारा पंजाब और खिलाफत की भूलों

का परिमार्जन कराया जा सकता है और राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा की जा सकती है।" गांधी जी के भाषण से प्रभावित होकर कई महिलाओ ने वहीं अपने आभूषण उतार कर राष्ट्रीय कार्य के निमित्त दे दिये और स्वदेशी की शपथ लेने में भी उत्साह दिखाया।[12] कानपुर की सभा में भी गांधी जी ने अपनी बात को दोहराया।

श्रीमती कस्तूरबा गांधी ने उत्तर प्रदेश में क्रमशः 8 फरवरी 1921 को गोरखपुर, 9 को बनारस, 10 को फैजाबाद और 11 को लखनऊ में सभाओं को सम्बोधित किया।[13]

उत्तर प्रदेश की स्त्रियों ने इस आन्दोलन में बढ-चढ कर भाग लिया। इलाहाबाद में स्वरूप रानी नेहरू, उमा नेहरू, कमला नेहरू प्रान्तीय काग्रेस कमेटी की सदस्या चुनी गईं, साथ ही श्रीमती स्वरूप रानी नेहरू उपाध्यक्ष निर्वाचित हुईं।[14] उन्होंने स्त्रियों से अनुरोध करते हुए कहा—"मैं समस्त प्रदेश की स्त्रियों से प्रार्थना करती हूँ कि विदेशी वस्त्रों को न पहनें। विदेशी वस्त्र हमारे भाई-बहनों के खून से रगे हैं। उन्हें हम कैसे पहन सकते हैं? इलाहाबाद का प्रत्येक व्यक्ति इस पवित्र प्रतिज्ञा को ग्रहण करे कि वह विदेशी वस्त्र नहीं छुएगा, खुद खद्दर पहनेगा और चर्खा चलायेगा।....आन्दोलन चल रहा है उसमें यदि पुरुष अपना साहस खोदेंगे तो हम महिलायें कार्य को आगे बढ़ायेंगी।"[15]

अयोध्या में शान्ती देवी ने एक सार्वजनिक सभा में उन पुरुषों को धिक्कारा जो अपनी स्त्रियों को साथ नहीं लाये थे। उन्होने स्त्रियों को झाँसी की रानी और अन्य वीरांगनाओं से प्रेरणा प्राप्त करने का आह्वान किया।[16] अयोध्या में एक नियम बन गया था कि प्रत्येक

मंगलवार को कांग्रेस का एक जुलूस निकलता था जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों सम्मिलित होते थे।[17]

श्रीमती सरोजिनी नायडू ने 1921 में फर्रुखाबाद में एक राजनीतिक सम्मेलन की अध्यक्षता की। इस सम्मेलन में जवाहर लाल नेहरू व कमला नेहरू ने भाग लिया। फर्रुखाबाद जिले से असहयोग आन्दोलन में भाग लेने वालों में श्रीमती शीला देवी प्रसिद्ध थीं।[18]

बिजनौर की अनेक महिलाओं ने पर्दे का त्याग कर असहयोग आन्दोलन में भाग लिया। श्रीमती श्यामा देवी और ज्ञान देवी ने कांग्रेस की सभा को सम्बोधित किया। उन्होंने जुलूस निकाले और इन्हीं के नेतृत्व में स्त्रियों ने प्रदर्शन किये।[19]

लखनऊ में दफा 144 के अन्तर्गत सभी प्रकार की सभायें वर्जित होने पर भी महिलाओं की एक सभा श्रीमती अब्दुल कुँवर के सभापतित्व में हुई। इस सभा में श्रीमती कृष्णा नेहरू, श्रीमती हाकिम अब्दुल वहाब, श्रीमती तेज बहादुर; श्रीमती शिव राज नेहरू, श्रीमती गोपाल नारायण और श्रीमती बेनी प्रसाद सिंह आदि ने भाग लिया। श्रीमती अब्दुल कुंवर ने महिलाओं से अनुरोध करते हुए प्रस्ताव पास किया कि खादी को अपनाया जाये और पुरुषों को आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया जाये। इसके साथ ही महिलाओ के बीच काम को आगे बढ़ाने के लिए श्रीमती अब्दुल कुँवर के सभापतित्व में एक समिति बनायी गयी और कृष्णा नेहरू समिति की सचिव नियुक्त की गयीं।[20]

28–29 जनवरी, 1922 को अली बन्धुओं की माता बी अम्मान ने आजमगढ जिले में मुहम्मदाबाद, कोपारगज और मऊ मे विशाल जनसभा को सम्बोधित किया और हिन्दू–मुस्लिम एकता को बनाये रखने की अपील की।[21]

छोटे–बड़े सभी शहरों मे आन्दोलन का विस्तार होने लगा था। स्थानीय स्तर पर स्त्रियों ने अनेक आन्दोलन किये। मुरादाबाद जिले में श्रीमती द्वारका प्रसाद और श्रीमती प्रताप नारायण ने सार्वजनिक सभाओं में जोशीले भाषण दिए।[22] श्रीमती शान्ति देवी ने हाटा और बड़हलगंज (गोरखपुर) में एक जनसभा को सम्बोधित करते हुए पुलिस की दमन नीति के विरोध में सरकारी कर्मचारियों से प्रार्थना की कि वे अत्याचारी सरकार की सेवा से त्यागपत्र दें।[23]

झाँसी जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष श्री आर सी. कंचन की माँ के नेतृत्व में लगभग 500 महिला स्वयं सेविकाओं ने झाँसी में हाथ में तिरंगा झण्डा लिए हुए प्रदर्शन किया।[24] बदायूँ जिले में 300 स्त्रियों और पुरुषों ने एक शराब की दूकान के सामने धरना दिया।[25] गोण्डा जिले में हुई एक सभा में लगभग 300 महिलाओं ने विदेशी कपड़ों का बहिष्कार करने की प्रार्थना की और स्वदेशी का घर–घर प्रचार किया। इन महिलाओं ने विदेशी वस्त्रों की होली जलाई।[26]

श्रीमती पार्वती देवी को मेरठ में असहयोग आन्दोलन के दौरान उत्तेजक भाषण देने के लिए धारा 124–ए और 153–ए के अन्तर्गत दो वर्ष के कारावास का दण्ड प्रदान किया गया। अदालत में भारतीय स्त्रियों को दिए गए अपने संदेश में उन्होंने कहा—"प्रत्येक जाति का भाग्य मुख्य रूप से उसकी स्त्रियों पर निर्भर करता है। भारत

माता की प्रत्येक पुत्री के हृदय में अपनी मातृभूमि के लिए आदर का भाव होना चाहिए। जब तक कि उसके हृदय मे भारत माता के दुःख, दुर्भाग्य, दीनता और दासता वैसी ही नहीं चुभेगी जैसी कि महात्मा गांधी को चुभती है, तब तक स्वतन्त्रता दिवा स्वप्न ही रहेगी। इसलिए मेरी बहनों हमारे कन्धों पर बड़े कर्तव्य और उत्तरदायित्व का भार है।"[27]

सहारनपुर की विद्या देवी,[28] लखनऊ की श्रीमती आनन्दी देवी,[29] बरेली की शीला देवी,[30] मथुरा की श्रीमती विद्या देवी,[31] मुजफ्फर नगर की ज्ञान देवी,[32] झाँसी की श्रीमती लक्ष्मण कुमारी शर्मा[33] आदि अनेक महिलाओं ने आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया और स्त्रियों व पुरुषों की एक बहुत बडी संख्या को आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया।

प्रान्तीय काग्रेस कमेटी के 'स्वदेशी विभाग' के अनुसार प्रान्त में चरखों की संख्या तेजी से बढ रही थी। इलाहाबाद, झाँसी, इटावा, जालौन, हाथरस, अलीगढ़, कासगंज, एटा, बुलन्दशहर, मैनपुरी और कानपुर की कांग्रेस कमेटियों ने सूत कातने और खादी के प्रचार के अच्छे परिणाम प्राप्त किये। खादी की दुकाने प्रत्येक जिले में खुल गईं। खद्दर की माँग दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही थी और विदेशी कपड़ों के बहिष्कार को बहुत सफलता मिली। विदेशी कपड़ों की बिक्री में 65 प्रतिशत गिरावट आई और यह गिरावट बढ़ती ही जा रही थी।[34] इसका पूरा श्रेय उत्तर प्रदेश की स्त्रियों को दिया जा सकता है।

इसी समय महिलाओं को प्रोत्साहित करने हेतु महिला पत्रिकाओं ने भी अनेक प्रेरक लेख और कवितायें प्रकाशित कीं।

'स्त्री-दर्पण' नामक पत्रिका के एक लेख में श्री परशुराम ने स्त्रियों का आह्वान करते हुए लिखा-"महिलाओं! इस समय मोटा पहन कर और सूत कातकर देश की लाज रखो। पुण्य, पतिव्रत और स्वार्थ-त्याग जो कुछ है, आज इसी में है।"[35] 'स्त्री दर्पण' के एक लेख में श्री देश बन्धु ने पुरूषों से अनुरोध किया कि वे अपनी स्त्रियों को परदे मे न रखें क्योंकि इससे वे इस पुनीत आन्दोलन में भाग न ले सकेंगी।[36] स्त्रियाँ स्वयं भी पीछे नहीं रहीं। 'कुमारी दर्पण' नामक पत्रिका में सम्पादिका ने बालिकाओं को सम्बोधित करते हुए लिखा, "तुम लोग चरखे खरीदकर सूत कातो और उसी सूत के कपड़े जुलाहे से बनवाकर पहनों, कम से कम दो घण्टे सूत कातने का निश्चित रखो।"[37]

'ज्योति' नामक पत्रिका में सुश्री यशोदा देवी ने बहनों के प्रति 'छोटा सा वक्तव्य' शीर्षक लेख में लिखा है कि "जिन बहनों के पति जेल जा रहे हैं उनका कर्तव्य है कि रो-रो कर समय नष्ट न करें, बल्कि जिस उद्देश्य के निमित्त उनके सम्बन्धी जेल गये हैं उसे पूरा करने का प्रयत्न करें।"[38] चाँद, सुधा, सरस्वती, मर्यादा, गृहलक्ष्मी आदि पत्रिकायें भी स्त्रियों में चेतना का संचार करने के लिए प्रयासरत थीं। लेखों के साथ-साथ इनमें अनेक प्रेरक कवितायें भी प्रकाशित होती रहती थीं। जैसे :-

जग में स्वराज्य वीणा अब तो बजाओ बहनों!
देशी सुवस्त्र सुख से पहनो, पहनाओ बहनों![39]

गाँधी जी और अन्य नेताओं के आह्वान और पत्र-पत्रिकाओं के उत्साहवर्धक लेखों और कविताओं से स्त्रियाँ अपनी एक नवीन भूमिका की ओर अग्रसर हुई।

5 फरवरी, 1922 को गोरखपुर में घटित हुए चौरी-चौरा काण्ड के कारण असहयोग आन्दोलन बीच में ही समाप्त कर दिया गया। आन्दोलन के आकस्मिक स्थगन से देश में प्रतिकूल और अनुकूल दोनों प्रकार की प्रतिक्रियाये हुई। असहयोग आन्दोलन यद्यपि अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में पूर्ण सफल नहीं रहा तथापि भारतीय इतिहास में इसकी उपलब्धियाँ अविस्मरणीय हैं। इस आन्दोलन को अखिल भारतीय समर्थन प्राप्त हुआ। कांग्रेस एक अखिल भारतीय सस्था के रूप में उभर कर सामने आयी। इस आन्दोलन ने जाति, धर्म, समुदाय, लिंग से ऊपर उठकर पूरे देश को आन्दोलित किया। असहयोग आन्दोलन की एक उल्लेखनीय सफलता यह थी कि सदियों से घर की चहारदीवारी में कैद भारतीय नारी ने उसमें सक्रिय भाग लिया। आन्दोलन में उत्तर-प्रदेश की महिलाओं की भागीदारी पर विचार करने के क्रम में दो तथ्य विशेष रूप से दृष्टिगत होते हैं। प्रथम, महिलाओं की भागीदारी ने उनकी घरेलू दासता एवं रूढ़िवादी संस्कारों पर गहरा प्रहार किया और उनमें सामाजीकरण की प्रक्रिया को तीव्र किया, चेतना का संचार किया। द्वितीय, महिलाओं का राजनीतिकरण किया। वे पहली बार पुरुषों के समक्ष हीनता के अभिशाप से मुक्त हुई। महिलायें राजनीतिक और सामाजिक रूप से जागृत हुईं। बहुत सी महिलाओं ने सत्याग्रह किया और गिरफ्तारियाँ दीं।

स्त्रियों का देश के हित में जेल जाना कभी भी सुनने में नहीं आया था। जेल अब भयानक स्थान नहीं रह गया था, अपितु तीर्थ स्थान बन गया था। असहयोग आन्दोलन में उत्तर प्रदेश की महिलाओं ने भारी संख्या में गिरफ्तारियाँ दी थीं। आन्दोलन ने महिलाओं में नया आत्मविश्वास उत्पन्न कर दिया। घर-घर में स्वराज्य का नारा सुनाई दे

रहा था। आन्दोलन की सफलता का पूर्ण श्रेय गाँधी जी ने स्त्रियो को दिया—"पूर्ण आन्दोलन स्त्रियों पर निर्भर था और यदि स्त्रियों ने सहयोग देने से मना कर दिया होता तो यह उसी समय समाप्त हो जाता।"[40]

25 मार्च, 1922 को उत्तर प्रदेश की 'प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी' ने इलाहाबाद में एक प्रस्ताव पास किया, जिसमें खादी के प्रचार और विदेशी कपड़ों के बहिष्कार कार्यक्रम को जारी रखने का निर्णय लिया गया।[41] 29 मार्च, 1923 को मेरठ में स्त्रियों की एक सभा को सम्बोधित करते हुए पं. मोती लाल नेहरू ने कहा कि "किसी बडे कार्य की सफलता के लिए उसमें स्त्रियों की भागीदारी आवश्यक है।" उन्होंने स्त्रियों से अपने आत्मविश्वास को बनाये रखने व खादी का प्रचार करने की अपील की।[42]

खादी के कार्यक्रम को जीवन्त बनाये रखने के लिए प्रान्त में अनेक महिला संगठनों की स्थापना हुई जैसे कानपुर में 'महिला स्वराज्य सभा',[43] मेरठ[44] और अलीगढ़[45] में 'स्त्री समाज', बुलन्दशहर में 'प्रान्तीय महिला परिषद'[46] आदि। लेकिन असहयोग आन्दोलन के दौरान आई सक्रियता की तुलना में यह बहुत कम था।

दिसम्बर, 1924 में बेलगाम में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का सम्मेलन हुआ। उसके छः हजार प्रतिनिधियों में से एक हजार महिलायें थीं।[47] यह महिलाओं में आई चेतना का परिचायक था। 1925 में सरोजिनी नायडू भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्ष निर्वाचित हुईं। उन्होंने अपनी अध्यक्षता को—भारतीय नारी के प्रति अपनी सच्ची श्रद्धांजलि और इस धार्मिक व आध्यात्मिक देश में नारी की जायज

स्थिति और अस्मिता का प्रतीक माना।[48] इससे उत्तर–प्रदेश की संकोची महिलाओं को भी प्रेरणा प्राप्त हुई। उन्होंने स्वतन्त्रता आन्दोलन से जुडने के लिए घर, पति और बच्चों को भी छोड़ दिया। इन महिलाओं के उत्साह से नौकरशाही घबरा उठी थी। कस्बों, ग्रामों की महिलायें भी पीछे न रही थीं। सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश इस शताब्दी के तीसरे दशक में महिला जागरण से आन्दोलित हो उठा था।[49]

महिलाओं में देश भक्ति की भावना भरने तथ सुभाष चन्द्र बोस के विचारों का प्रसार करने के लिए 1927 में 'महिला राष्ट्रीय संघ' की स्थापना हुई थी।[50] इसकी अध्यक्ष सुभाष चन्द्र बोस की माता प्रभावती थीं। क्रान्तिकारी गतिविधियों में भी स्त्रियों ने भाग तो लिया, परन्तु उन्होंने इसमें अधिक सक्रिय भागीदारी नहीं की। वे अप्रत्यक्ष रूप से क्रान्तिकारियों की सहायता करती थीं। अनेक क्रान्तिकारी जैसे शचीन्द्र नाथ सान्याल, राम प्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिड़ी, चन्द्रशेखर आजाद, भगवती चरण बोहरा, जयदेव, यशपाल इस प्रान्त से सम्बद्ध थे। श्री भगवती चरण वोहरा की पत्नी, जो 'दुर्गा भाभी' के नाम से प्रसिद्ध थीं, ने सदैव क्रान्तिकारियों की सहायता की। दुर्गा भाभी चन्द्रशेखर आजाद और भगत सिंह के क्रान्तिकारी दल के सदस्यों को आश्रय देती थीं। अंग्रेज सार्जेन्ट सांडर्स की हत्या करके भगत सिंह फरार हो गये। दुर्गा भाभी ने भगत सिंह को सुरक्षित पश्चिम बंगाल पहुँचाने में उनकी सहायता की थी।[51]

नवम्बर 1927 में साइमन कमीशन के गठन ने धीमे पड रहे राष्ट्रीय आन्दोलन को पुनः जागृत कर दिया। इस कमीशन में एक भी भारतीय सदस्य नहीं था अतः एकमत से इसका विरोध किया गया।

अलीगढ में प्रान्तीय सम्मेलन ने और अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी ने अपनी मद्रास की बैठक में कमीशन के बहिष्कार का निर्णय लिया।[52] 3 फरवरी, 1928 को कमीशन के बम्बई पहुँचने पर विरोधस्वरूप देशव्यापी हड़ताल की गयी। जगह-जगह सभायें कर जुलूस निकाले गये। सहारनपुर की सूर्य प्रभा देवी ने साइमन कमीशन के विरोध में जिले के इतिहास में सबसे बड़ा जुलूस निकाला।[53]

13 अक्टूबर, 1928 को मेरठ में हुए एक राजनैतिक सम्मेलन में उत्तर प्रदेश की स्त्रियों की सामाजिक-राजनीतिक जागरुकता को अभिव्यक्त करते हुए श्रीमती पार्वती देवी ने अपने प्रभावशाली भाषण में कहा कि—"आज भारतीय महिलाओं को अपनी स्वतन्त्रता और अधिकार प्राप्त करने के लिए दो शक्तियों से लड़ना पड़ रहा है, एक तो विदेशी सरकार से और दूसरे भारतीय पुरुषों की संकीर्ण मनोवृत्ति से।" पार्वती देवी ने प्रत्येक स्त्री से कम से कम तीन घण्टे सूत कातने, पर्दा प्रथा को समाप्त करने व विधवा विवाह का प्रचार करने की प्रार्थना की।[54]

राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रथम चरण में स्त्रियों के प्रति समाज के विचारों में परिवर्तन आया। स्त्रियों में भी सामाजिक-राजनीतिक चेतना का संचार हुआ और वे अपने व्यापक उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक होने लगीं। नारी जो पूर्ण शोषित वर्ग था अब चेतनशीलता के दौर में आ गया। संक्षेप में, तीसरे दशक के अंत तक उत्तर प्रदेश की महिलाओं का बड़ा भाग राजनीतिक क्रियाकलापों में लिप्त हो चुका था और स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए अपना पूर्ण सहयोग देने को तत्पर हो चुका था।

समाज और महिलायें

स्त्रियों में राजनीतिक जागरुकता का सचार होने का यह तात्पर्य नहीं था कि समाज में उनकी वास्तविक स्थिति में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन आ गया था। वस्तुतः समाज में उनका स्थान अभी भी हीन था। समाज में विधवा समस्या, बाल-विवाह, पर्दा प्रथा, बहु विवाह, दहेज प्रथा, अशिक्षा, शारीरिक-मानसिक शोषण, आर्थिक पराधीनता आदि समस्याओं से नारी त्रस्त थी। 1921 की जनगणना से यह परिलक्षित होता है कि विधवा समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया था।

1921 की जनगणना के अनुसार—[55]

आयु	बाल विधवायें
1 से 5 वर्ष	2,43,260
5 से 10 वर्ष	14,35,241
10 से 15 वर्ष	53,54,434

यदि इन आँकड़ों को जोड़ा जाये तो केवल 15 वर्ष से कम आयु वाली विधवाओं की संख्या, 70,32,935 थी। इनके अतिरिक्त 15 वर्ष से अधिक आयु वाली विधवाओं की संख्या 4,88,41,092 थी। जिस समाज में पाँच करोड़ साठ लाख विधवायें हों, वह समाज किसी प्रकार से सुख-सम्पन्न नहीं रह सकता। उत्तर प्रदेश में स्थिति

इससे अधिक भिन्न नहीं थी। विधवाओं की यह विशाल संख्या नारकीय जीवन जीने के लिए बाध्य थी।

नारी की दयनीय स्थिति और नारी के उत्थान के प्रति जागरुकता ये दो परस्पर अंतर्विरोधी तत्व समाज में व्याप्त हो गये थे। उत्तर प्रदेश में विधवाओ की स्थिति मे सुधार लाने के लिए विभिन्न स्थानों पर विधवाश्रमों की स्थापना होने लगी। साथ ही पत्र-पत्रिकाओं में सुधार कार्यक्रमों की चर्चा भी होने लगी। इससे आभास मिलता है कि विधवा-पुनर्विवाह को सीमित रूप से ही सही परन्तु स्वीकृति मिलने लगी थी। 1924 में मथुरा में लाहौर की 'विधवा विवाह सहायक सभा' के द्वारा अन्नपूर्णा जी के मन्दिर के समीप विधवाश्रम खोला गया।[56] झाँसी में भी एक विधवाश्रम खोला गया। 1923 में काशी मे विधवाओं के लिए 'आर्य समाज विधवाश्रम' की स्थापना हुई।[57] 1924 में बनारस में, विधवाओं के लिए 'आर्य महिला विद्यालय' स्थापित किया गया।[58] विधवा विवाह सहायक सभाओं द्वारा सन् 1926 में उत्तर-प्रदेश के विभिन्न जिलों में कुल मिलाकर 372 विवाह सम्पन्न कराये गये।[59] 7 अप्रैल, 1927 को पं. श्रीराम जी की अध्यक्षता में एक सम्मेलन हरिद्वार में हुआ, जिसमें बाल विवाह और विधवा विवाह के सम्बन्ध में प्रस्ताव पारित हुए।[60]

अब समाज सुधार संस्थायें ही नहीं जाति सभाएं भी सुधार कार्य में भाग लेने लगी थीं। सन् 1927 में गोरखपुर की 'अग्रवाल सभा' में उपस्थित सभी अग्रवालों ने सर्वसम्मति से विधवा पुनर्विवाह करने की अनुमति दी।[61] गोरखपुर की ही भांति आजमगढ़ और गोसाईगंज (फैजाबाद) में अग्रवाल-वैष्य सभा ने भी सर्वसम्मति से बाल

विधवाओं के पुनर्विवाह के निर्णय को स्वीकार किया।[62] यद्यपि इन सुधार कार्यों की संख्या बहुत कम थी, फिर भी देश और समाज की उन्नति की इच्छा रखने वाले सभी सुधारक, विधवाओं की दशा सुधारने की दिशा में प्रयास करते रहे।

गाँधी जी के उदारवादी विचारों का भी समाज पर सकारात्मक प्रभाव पडा। गाँधी जी विधवा पुनर्विवाह का समर्थन दृढ स्वरों में करते थे। उनका कथन था कि "जो बाल विधवायें हैं उनके पुनर्विवाह का प्रश्न ही नहीं उठता अपितु ऐसा सोचना भी नहीं चाहिए कि उनका विवाह भी हुआ है। उनका एक कुमारी लडकी के समान विवाह करना चाहिए।" अन्य विधवाओं के सम्बन्ध में उनका विचार था कि समाज को उनकी इच्छा पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं लगाना चाहिए। यदि वे पुनर्विवाह करना चाहती हैं तो समाज को सहर्ष, सगर्व उन्हें प्रेरित करना चाहिए। गाँधी जी ने पर्दा प्रथा का विरोध किया था। नारी के प्रति पुरुष के रूढ़िवादी दृष्टिकोण की गाँधी जी ने कटु आलोचना की थी। उनका मानना था कि पुरुष को कोई अधिकार नहीं कि वह नारी की पवित्रता का नियन्ता बने।[63] उन्होंने पितृसत्तात्मक सस्कृति में विद्यमान भेदभाव के प्रति स्त्रियों में जागरुकता की पहल की थी।

महात्मा गाँधी ने अपने आश्रम में तथा अपने सभी कार्यक्रमों में स्त्रियों को पुरुषों के समान ही प्रत्येक काम में भाग लेने के लिए समान दर्जा प्रदान किया था। नारी को वह शक्ति कहते थे और कष्ट सहन में सक्षम होने के कारण उसके लिए प्रयुक्त अबला शब्द से

उन्हें चिढ थी। वे स्वतन्त्रता संग्राम में विजय के लिए उन्हें सच्चा और विश्वासी साथी मानते थे।[64]

औपन्यासिक साहित्य में नारी

नारी के विभिन्न पहलुओं को उजागर कर उसका नवीन प्रतिष्ठा प्रदान करने में साहित्यकार मुखर हुए। समाज, चाहे वह हिन्दू समाज हो अथवा मुस्लिम समाज, दोनों में नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। शक्तिशाली पुरुष वर्ग के लिए कुछ दूसरे ही नियम थे जिनकी परिणति विशेषाधिकारों में होती थी तथा शक्तिहीन नारी वर्ग के लिए कुछ दूसरे ही कर्तव्य निश्चित किये जाते थे, जिनकी परिणति आदर्शों तथा नैतिकता के मानदण्डों की स्थापनाओं में होती थी। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि भारतीय समाज में नारी वर्ग ही सर्वाधिक पीड़ित रहा, अछूत वर्ग से भी कहीं अधिक। नारी की इस दयनीय स्थिति के प्रति नवीन मानवतावाद की चेतना से प्रभावित लेखकों का ध्यान आकृष्ट होना स्वाभाविक ही था। तत्कालीन साहित्यकारों ने समाज में व्याप्त अन्तर्विरोधी मान्यताओं को व्यक्त किया।

मुंशी प्रेमचन्द का भारतीय समाज-दर्शन में सबसे प्रशंसनीय कार्य यह था कि उन्होंने नारी को रूढ़िवादी समाज से मुक्ति दिलाने में महत्वपूर्ण सहयोग दिया। उनका स्पष्ट विचार था कि "पुरुषों ने नारी का शोषण करने के लिए कायदे कानून बनाये हैं। उसी तरह जैसा ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने हम लोगों के लिए। जैसे हम लोगों के मूर्ख होने में सरकार का लाभ है, वैसे ही स्त्रियों को मूर्ख बनाने में पुरुषों

का।" वास्तव में प्रेमचन्द का सम्पूर्ण उपन्यास साहित्य रूढ़ियों तथा अन्याय के विरुद्ध नारी विद्रोह का दस्तावेज है।

विधवा समस्या को इस काल में प्रमुखता से विवेचित किया गया क्योंकि नारी का सर्वाधिक अमानुषिक शोषण इसी स्थिति में नियत था। यह प्रथा अनेक सामाजिक दोषों का परिणाम थी और अनेक सामाजिक समस्याओं को जन्म देती थी। प्रेमचन्द विधवा को सामाजिक समस्या के रूप में चित्रित करते हैं। 'प्रेमाश्रम' की विधवा गायत्री का चरित्र विधवा समस्या की उपज है।[65] वैधव्य की निरीहता ही उस अनैतिकता का कारण है, जिसका अन्तिम परिणाम विद्यावती की आत्महत्या है। यह गायत्री के वैधव्य की कड़ी है। सामाजिक दोष किस प्रकार धर्म-संस्कृति को दूषित करते हैं, यह इस प्रकरण से स्पष्ट है। प्रेमचन्द ने वैधव्य समस्या में प्रगतिशीलता का परिचय दिया है। इससे ज्ञात होता है कि महिलाओं की सामाजीकरण की प्रक्रिया बुद्धिजीवी वर्ग को आन्दोलित कर रही थी और उसका ज्वार समाज को आप्लावित कर रहा था। 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में विधवा समस्या को ही आधार बनाया गया है। पूर्णा का वैधव्य विधवा समस्या के अनेक रूपों को उद्भासित करता है।[66] विधवा के निराश्रित होने की समस्या, आर्थिक सुरक्षा का प्रश्न, व्यभिचार, बलात्कार की समस्या ज्वलन्त रूप से समाज को आन्दोलित करती है। समाज में विधवा पर दुहरा आक्रमण होता है। एक ओर वह समस्त मानवीय अधिकारों से वंचित दीन-हीन निराश्रित प्राणी है, दूसरी ओर समाज उसके चरित्र की नाप-तौल अत्यन्त तीक्ष्ण दृष्टि से करता है। विधवा के पास इस दुहरे आक्रमण का से बाहर निकलने का कोई मार्ग नहीं होता है। प्रेमचन्द ने 'प्रतिज्ञा' में नारी की इस निरीहता को स्पष्ट करते हुए पुरुष वर्ग की स्वार्थपरता को उजागर

किया है। इस प्रकार प्रेमचन्द ने विधवा समस्या की विस्तृत विवेचना करके समाज की नारी सोच व मानसिकता को कुरेदा और नारी चेतना को जीवन्त बनाया। पुनर्विवाह विधवा समस्या का उचित समाधान था, परन्तु वास्तविकता यह रही कि विधुर तो अपना दूसरा विवाह स्वाभाविकता तथा सहजता से कर लेता था, परन्तु विधवा के पुनर्विवाह का समाज में कट्टर विरोध था। तत्कालीन साहित्यकारों ने विधवा समस्याओं से समाज को आन्दोलित करने का सशक्त प्रयास किया था, परन्तु इस काल में वे समाधान के लिए साहस नहीं जुटा सके थे। प्रारम्भ में सुधारवादी मार्ग का सहारा लेकर विधवाओं को 'विधवा-आश्रम' में शरण दी गई। यह अत्याचारी समाज से नारी को सुरक्षित रखने की अस्थाई व्यवस्था थी। 1929 में जैनेन्द कुमार ने 'परख' में विधवा समस्या की गहराई को परखा और सुधारवादी मार्ग की अपेक्षा क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिए समाज को आन्दोलित किया। सामाजिक मान्यताओं के प्रति कट्टो का विद्रोह तत्कालीन समाज की विधवाओं के प्रति अनुभूति का प्रतीक है।

विधवा समस्या के अतिरिक्त स्त्रियों की स्थिति में सुधार की प्रक्रिया में दहेज प्रथा, बहुविवाह की समस्या, अनमेल विवाह, वेश्या समस्या, नारी के साम्पत्तिक अधिकारों की समस्या, घर-बाहर की मर्यादा की समस्यायें आदि गतिरोध सिद्ध हुए। 'निर्मला' में दहेज-प्रथा का दुष्परिणाम अनमेल-विवाह के रूप में प्रगट हुआ है।[67] 'सेवासदन' में दहेज का दुष्परिणाम वेश्या समस्या के रूप में दिग्दर्शित हुआ है।[68] दहेज की समस्या मध्यम वर्ग में सर्वाधिक थी। दहेज समस्या का मूल कारण मध्यम वर्ग में दयनीय आर्थिक स्थिति का होना था। प्रेमचन्द ने अपने औपन्यासिक पात्रों के द्वारा दहेज प्रथा के विरुद्ध समाज को

जाग्रत करने का सशक्त प्रयास किया। प्रेमचन्द ने सामाजिक कुरीतियों के प्रति विद्रोह करने के लिए अपने उपन्यासों में आदर्शवादी तथा नवीन मान्यताओं की स्थापना के लिए अनेक उत्साही, कर्मठ, साहसी चरित्रों का निर्माण किया। 'कायाकल्प' का चक्रधर भी ऐसा ही चरित्र है, जो न केवल राजनीतिक क्षेत्र में गाधीवादी तथा राष्ट्रवादी सेवक है, अपितु वैयक्तिक जीवन मे भी सामाजिक रूढ़ियों का विरोध करता है। वह अपनी माँ से दहेज-प्रथा का कड़ा विरोध करता है।[69] इसी प्रकार प्रेमचन्द ने बहु पत्नी विवाह की समस्या राजा विशाल सिंह के माध्यम से प्रस्तुत की क्योकि सामंतवर्ग में ही इस प्रथा की अधिकता थी।

अनमेल विवाह भी नारी समाज की एक मुख्य समस्या थी। बहुधा अनमेल का रूप वृद्ध-विवाह होता है अर्थात् किशोरावस्था की लडकियों का विवाह वृद्ध पुरुषों से सम्पन्न किया जाता था। 'निर्मला' की निर्मला ऐसी ही परतन्त्र नारी है जो अनमेलविवाह के विधान पर बलिदान होती है। प्रेमचन्द तीव्र व्यग्य से इस मजबूरी को व्यक्त करते हैं—"दहेज देने की औकात नहीं! अब अच्छे घर की जरूरत न थी। अभागिनी को अच्छा घर-वर कहाँ मिलता, अब तो किसी भांति सिर का बोझ उतारना था, किसी भी भाति लड़की को पार लगाना था, उसे कुएँ में झोंकना था।"[70] आर्थिक विपन्नता की स्थिति में निर्मला की माँ उसका विवाह दोहाजू से कर देती है, जो तीन पुत्रों का पिता था। इस प्रकार अनमेल विवाहों की समस्याओं को समाज के सामने रखकर समाज को जाग्रत करने का प्रयास इस काल में निहित है।

समाज में व्याप्त घोर निर्धनता, अशिक्षा, उचित संरक्षण के अभाव, आर्थिक अधिकारों से विहीनता ने नारी की चारित्रिक दृढता को

समाप्त करने में योग दिया और सम्पन्न वर्ग ने अपनी विलासिता की पूर्ति के लिए वेश्यावृत्ति के कुत्सित व्यापार को बढावा दिया। स्त्री घर की देहरी से बाहर निकलकर अपनी रक्षा करने में असमर्थ थी। सांस्कृतिक अवमूल्यन की यह स्थिति थी कि वेश्यावृत्ति को संगठित करने के लिए धर्म का उपयोग किया गया। उत्तर प्रदेश में तराई क्षेत्र तथा हिमालय की तलहटी में नायक समुदाय में लडकी का विवाह न करके उसे वेश्यावृत्ति के लिए बेचने की प्रथा इसी धार्मिक विश्वास का परिणाम थी।[71] साहित्यकार नारी के शोषण की इस चरम स्थिति के प्रति उदासीन नहीं थे। 'सेवासदन' में प्रेमचन्द ने पहली बार वेश्या के प्रति मानवतावादी धरातल पर सहानुभूति पूर्ण दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। इसमें प्रेमचन्द ने यह तथ्य प्रस्तुत किया कि घृणा की पात्र सुमन नहीं अपितु वह समाज है, जिसने उसे वेश्या बनने के लिए विवश किया।[72] इसमें दहेज, अयोग्य वैवाहिक सम्बंन्ध, निर्धनता, समाज की खोखली नैतिकता आदि सभी को कुरेदा गया, जिसने सुमन को वेश्या बनने पर विवश किया था। जयशकर प्रसाद ने 'कंकाल' में वेश्यावृत्ति के मूल मे जर्जर समाज की खोखली नैतिकता तथा मर्यादाओं पर व्यंग्य कसा है।

इस युग के औपन्यासिक साहित्य में पहली बार विद्रोही नारी के दर्शन होते हैं। समाज में स्त्रियाँ पितृसत्तात्मक सस्कृति मे विद्यमान भेदभाव के प्रति जागरूक हो चुकी थीं। वे नवीन चेतना से प्रेरित थीं, जो रूढ़िवादी समाज के प्रति विद्रोह करके नवीन समाज रचना की ओर अग्रसर थीं। आधुनिक चेतना से प्रभावित नारी पति तथा समाज के अत्याचारों के विरुद्ध पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनीतिक विभिन्न धरातलों पर संघर्ष करती है। इसकी सशक्त अभिव्यक्ति समकालीन साहित्य में मिलती है। 'प्रेमाश्रम' की विलासी ऐसी ही नारी

है जो जमींदार व पुलिस के अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह करती है।[74] इसी प्रकार 'प्रतिज्ञा' की प्रेमा सामाजिक सुधार आन्दोलनों का नेतृत्व करती सी दिखाई पड़ती है।[75] प्रेमा उपन्यास साहित्य की प्रथम नारी है जो गृहस्थी की देहरी लांघकर सर्वप्रथम सामाजिक रंगमंच पर आती है। एनी बेसेन्ट, सरोजिनी नायडू आदि नारियाँ भी सामाजिक-राजनीतिक रंगमंच पर आ चुकी थीं। प्रेमा का चरित्र उन्हीं की देन है। 'रगभूमि' की सकीना, 'कायाकल्प' की लौंगी—सामाजिक रूढिवादी मान्यताओं के प्रति विद्रोह करती हैं। 'सेवासदन' की सुमन, 'प्रतिज्ञा' की सुमित्रा, 'निर्मला' की सुधा, 'रंगभूमि' की इन्दू पारिवारिक धरातल पर पति के विशेषाधिकारों को चुनौती देती हैं। वे पति से तिरस्कृत एवं अपमानित होने पर परम्परागत हिन्दू नारी की भांति गिडगिडाती नहीं और न अपनी भावनाओं, विचारों का दमन करती हैं, अपितु वे पति के विशेषाधिकारों को चुनौती देती हैं तथा अपने अधिकारों के लिए विद्रोह करती हैं।

नारी मुक्ति आन्दोलन

1919 से 1929 के काल में राष्ट्रीय आन्दोलन की परिधि में नारी की मुक्ति का आन्दोलन भी निहित था। सार्वजनिक रंगमंच पर नारी ने शनै-शनै. प्रवेश किया। महात्मा गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रियता से भाग लिया। उन्होंने अपने सगठन बनाये और अपनी अशक्तताओं के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए मोर्चाबन्दी की।

1926 में लेडी टाटा और लेडी एबरडीन द्वारा 'नेशनल काउन्सिल ऑफ विमेन इन इण्डिया' की स्थापना की गई। इस सगठन

का लक्ष्य सामाजिक सुधारों के द्वारा स्त्रियों के अधिकारों को सुरक्षित रखना था।[76] चूंकि इसे अंग्रेजों का संरक्षण प्राप्त था अत यह कभी भी जनमानस का संगठन नहींबन पाया। 1927 में पूना में 'आल इण्डिया वीमेन्स कान्फ्रेंस' (AIWC) की स्थापना हुई। यह सर्वाधिक प्रभावशाली संगठन था। कुछ ही समय में यह एक विशाल संगठन बन गया, जिसकी शाखायें पूरे भारत में थीं।[77] सरोजिनी नायडू, लक्ष्मी मेनन, राजकुमारी अमृत कौर, बेगम हामिद अली, हनान सेन, धनवन्ती रामा राओ और अनेक अन्य प्रतिष्ठित महिलाओं ने लगभग चार दशकों तक इस संगठन के क्रियाकलापों का निर्देशन किया। इसकी बैठकें प्रारम्भ में मूल रूप से स्त्री-शिक्षा पर विचार-विमर्श के लिए होती थीं, परन्तु शीघ्र ही ये इस नतीजे पर पहुँची कि शिक्षा का प्रचार-प्रसार तब तक नहीं हो सकता जब तक कि पर्दा, बाल-विवाह, विधवा पुनर्विवाह, दहेज आदि सामाजिक समस्याओं के प्रश्नों को नहीं उठाया जाता। 1929 में पटना में हुए अपने तीसरे सम्मेलन में AIWC ने स्त्री शिक्षा के प्रसार में बाधक सभी सामाजिक बुराइयों को अपने कार्यक्षेत्र में सम्मिलित कर अपने क्षेत्र को विस्तृत किया।[78] बाल-विवाह तथा पर्दा जैसी रूढ़िवादी परम्पराओं के विरुद्ध खुलकर प्रचार किया।

AIWC के प्रयासों के फलस्वरूप ही स्त्रियों के लिए दिल्ली में 'लेडी इरविन कॉलेज' की स्थापना हुई। संगठन ने बड़ी सख्या में स्कूलों और हस्तकला केन्द्रों को स्थापित किया जहाँ गरीब परिवारों की स्त्रियाँ शिक्षित होती थीं और रोजगार प्राप्त करने में सक्षम होती थीं।[79] संगठन द्वारा बाल-विवाह के विरोध में चलाये गये आन्दोलन के परिणामस्वरूप ही 1929 में 'शारदा एक्ट' पारित हुआ। इस सगठन द्वारा उठाया गया एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न स्त्रियों को सम्पत्ति में

अधिकार दिये जाने का था। 1929 में 'हिन्दू लॉ ऑफ इन्हैरिटेंस' (सशोधन बिल) के रूप मे इन्हें आंशिक सफलता प्राप्त हुई। इसके द्वारा पुत्र की पुत्री, पुत्री की पुत्री, बहन और बहन की पुत्री को सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त हुए।[80]

इस जागरुकता तथा सामाजिकता ने निचले तबके की स्त्रियों को भी अशिक्षा, दरिद्रता के बावजूद अपने अधिकारों के प्रति सजग बना दिया था। 1920 के दशक में बम्बई, मद्रास, कानपुर आदि नगर औद्योगिक केन्द्रों के रूप में उभरे थे। बड़ी संख्या मे स्त्रियाँ भी इन केन्द्रों में रोजगार प्राप्त कर रही थीं। इन स्त्रियों में चेतना का संचार हो रहा था और ये 'ट्रेड यूनियन' से सम्बद्ध हो रही थीं। हजारों की संख्या में इन मजदूर औरतों ने हडताल, प्रदर्शन और कान्फ्रेंसों में भाग लिया।[81]

1920 के दशक में उत्तर प्रदेश की महिलाओं में अभूतपूर्व चेतना का संचार हुआ। उन्हें मताधिकार प्राप्त हुआ। वे अपने राजनीतिक उत्तरदायित्वों के प्रति सजग हुई। राष्ट्रीय आन्दोलन में उन्होंने बढ-चढ कर हिस्सा लिया और आन्दोलन में अपनी सक्रिय भागीदारी द्वारा पूरे विश्व को अचंभित कर दिया।

***

सन्दर्भ

1. नेहरू, जवाहर लाल, मेरी कहानी (अनु. हरिभाऊ उपाध्याय) पृ. 482
2. वही, पृ. 483
3. लिडल जोना और जोशी रमा, डॉटर्स ऑफ इण्डिपेंडेंस, पृ. 35
4. पार्लियामेन्टरी पेपर्स, 1924-25 (CMD. 2360) X, पृ. 129
5. पार्लियामेन्टरी पेपर्स, 1927 (CMD. 2923)XVIII, पृ. 2-22
6. नेहरू, जवाहर लाल, मेरी कहानी, (अनु हरिभाऊ उपाध्याय) पृ. 483-484
7. सीतारमैया, पट्टाभि, कांग्रेस का इतिहास, पृ. 140
8. वही, पृ. 142
9. द हिन्दू, 26 जनवरी, 1918
10. सीतारमैया, पट्टाभि, कांग्रेस का इतिहास, पृ 141
11. इंडिपेंडेण्ट, 22 दिसम्बर, 1921

12. सुमन, श्री रामनाथ, उत्तर प्रदेश में गाँधी जी, पृ 140-141

13. होम डिपार्टमेन्ट पोलिटिकल (डिपाजिट) प्रोसीडिन्ग्स, जून 1921, फाइल नं. 12

14. द लीडर, 16 दिसम्बर, 1921

15. अमृत बाजार पत्रिका, 23 मई, 1922

16. सी.आई.डी. रिकार्ड्स

17. ठाकुर प्रसाद सिंह (सम्पादित) स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी, जिला फैजाबाद

18. स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी, जिला फरुर्खाबाद, पृ. 41

19. द लीडर, 15 दिसम्बर, 1921

20. अमृत बाजार पत्रिका, 13, 15 जनवरी, 1922

21. सी.आई.डी. रिकार्ड्स

22. द लीडर, 30 जनवरी, 1922

23. वही, 27 जनवरी, 1922

24. अमृत बाजार पत्रिका, 25 जनवरी, 1922

25. द लीडर, 27 जनवरी 1922

26. द लीडर, 30 जनवरी, 1922

27 चाँद, जनवरी 1923, पृ 241

28 स्वतन्त्रता सग्राम के सैनिक (सहारनपुर), पृ. 62

29 निजामी, तब्बसुम, लखनऊ जनपद का राष्ट्रीय इतिहास, पृ. 65

30. स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिक (बरेली), पृ. 41

31. वही. (मथुरा), पृ. 65

32. वही (मुजफ्फरनगर), पृ0 111

33. वही (झाँसी), पृ. 85

34. ए.आई.सी.सी. रिकार्ड्स, फाइल नं.–5, 6, 1921

35. स्त्री दर्पण, जुलाई 1921, पृ 5

36. स्त्री दर्पण, अगस्त 1921, पृ. 96-97

37. कुमारी दर्पण, अगस्त 1921, पृ. 16

38. ज्योति, जनवरी 1922, पृ. 501

39. गृहलक्ष्मी, चैत् सम्वत् 1981, पृ. 5

40. गाँधी, एम.के., कलेक्टेड वर्क्स, खण्ड-18, पृ. 189-190

41. द लीडर, 31 मार्च, 1922

42 वही, 2 अप्रैल, 1922

43 चाँद, मार्च 1923, पृ. 142

44. चाँद, नवम्बर 1924, पृ. 95-96

45. चाँद, जून 1924, पृ. 182

46. चाँद, मई 1926, पृ. 66

47. मजुमदार, रायचौधरी, दत्त, भारत का वृहत् इतिहास, पृ. 322

48. इंडियन क्वार्टर्ली रजिस्टर, 1925, II, पृ. 316

49. आसफ अली, अरुणा, वुमेन्स सफ्रेज इन इण्डिया, पृ. 194

50. एम. कौर, वुमन इन इण्डियाज फ्रीडम स्ट्रगल, पृ. 89-90

51. अमर उजाला, 17 अक्टूबर, 1999

52. द इण्डियन क्वार्टर्ली रजिस्टर, भाग 2, 1927, पृ. 354

53. स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिक (सहारनपुर), पृ. 75

54. चाँद, दिसम्बर 1928, पृ. 442-443

55. चाँद, दिसम्बर 1931, पृ. 235

56. चाँद, नवम्बर 1924, पृ. 92

57 चाँद, अप्रैल, 1930, पृ. 976

58. स्त्री दर्पण, अगस्त 1924, पृ. 454

59 चाँद, जुलाई 1926, पृ. 220

60. चाँद, जून 1927, पृ. 299

61. चाँद, अगस्त 1927, पृ. 527

62. स्त्री दर्पण, अप्रैल, 1927, पृ. 131

63. सीतारमैया, पट्टाभि, पृ. 146, यंग इण्डिया, 10 अप्रैल, 1930

64. वोहरा, आशा रानी, भारतीय नारी दशा और दिशा, पृ. 14

65. प्रेमचन्द, प्रेमाश्रम, पृ. 39

66. प्रेमचन्द, प्रेमाश्रम, पृ. 53

67. प्रेमचन्द, निर्मला, पृ. 25

68. प्रेमचन्द, सेवासदन, पृ. 56

69. प्रेमचन्द, कायाकल्प, पृ. 208

70. प्रेमचन्द, निर्मला, पृ. 32-33

71. अग्निहोत्री, विद्याधर, फॉलेन वुमेन, पृ 8

72 प्रेमचन्द, सेवासदन, पृ. 23, 27, 296

73. प्रसाद, जयशकर, कंकाल, पृ. 53

74. प्रेमचन्द, प्रेमाश्रम, पृ. 184

75. प्रेमचन्द, प्रतिज्ञा, पृ. 106

76 फारुखी विमला, ए शॉर्ट हिस्ट्री आफ़ विमेन्स इन इण्डिया, पृ. 16

77 वही, पृ 16

78. बेग, तारा अली, इण्डियन वीमेन पावर, पृ 25

79. फारुखी, विमला, ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ विमेंस मूवमेंट इन इण्डिया, पृ. 17

80. वही, पृ. 17

81. अस्थाना, प्रतिमा, वुमेन्स मूवमेन्ट इन इण्डिया, पृ. 106

***

अध्याय-4

नारी उत्थान

(1930-1939)

1930 के दशक तक स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा था। 1937 में 'चाँद' के एक लेख 'भारतीय स्त्रियों की प्रगति'[1] में स्त्रियों की बदलती स्थिति पर विचार व्यक्त करते हुए लिखा गया कि—"कुछ समय पहले हमारे देश का महिला समाज अशिक्षा और अज्ञान के अन्धकार से आछन्न था। घर की चहारदीवारी ही स्त्रियों के कार्यक्षेत्र की सीमा थी। वाह्य संसार से उनका कुछ भी सम्पर्क नहीं रहता था। वे अधिकांशतः परदे में रहती थीं। वे इस बात का स्वप्न में भी ख्याल नहीं करती थीं कि स्त्रियाँ भी स्वतन्त्र रूप से जीविकोपार्जन कर सकती हैं अथवा सार्वजनिक कार्यों मे भाग ले सकती हैं। किन्तु अब परिस्थितियाँ बदलती जा रही हैं। स्त्रियों की स्थिति मे उत्तरोत्तर परिवर्तन होता जा रहा है। वे अज्ञान और कूपमडूकता से बाहर निकल रही हैं। परदे को हटा रही हैं। बाहरी दुनिया के सम्पर्क में आने लगी हैं। उनमें जागृति उत्पन्न हो रही है और अब वे उन्नति की ओर अग्रसर हो रही हैं।....लाखों कन्यायें स्कूलों में तथा हजारों महिलायें विद्यालयों में शिक्षोपार्जन कर रही हैं। शिक्षा का शायद ऐसा कोई विषय नहीं है, जिसका स्त्रियाँ अध्ययन नहीं कर रही हों। सीना-पिरोना, संगीत, व्यायाम, विज्ञान, चित्रकला, इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, गणित, दर्शन तथा साहित्य आदि सभी विषयों का ज्ञान स्त्री समाज ने अर्जित किया है। उन्होंने यह भी सिद्ध कर दिया है कि वे अधिक परिश्रमी तथा कुशाग्र बुद्धि वाली हैं। कभी-कभी तो पुरुष छात्रों से भी बाज़ी मार ले जाती हैं। अब स्त्रियाँ लेख लिख रही हैं, कवितायें रचती हैं, कहानियाँ लिखती हैं, सार्वजनिक सभाओं में व्याख्यान देती हैं। वकालत और डाक्टरी कर रही हैं। पढ़ाती हैं और स्वयसेविका क़ा काम करती हैं। उनका दृष्टिकोण अब पहले की तरह संकुचित नहीं रह गया

है। वे पुस्तकें और पत्रिकायें पढती हैं और देश और समाज के विविध प्रश्नों से परिचय रखती हैं। उनके जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रगति का आभास मिलता है। इसका मतलब यह नहीं है कि समाज की सभी स्त्रियों की अवस्था में परिवर्तन हो गया है। बहुत सी स्त्रियाँ अभी भी पुरानी ही अवस्था में पड़ी हैं। लेकिन फिर भी महिला समाज में एक नये युग का, एक नवीन जीवन का सूत्रपात हो गया है।"

1931 के भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के कराँची अधिवेशन में स्त्री-पुरुष के बुनियादी अधिकारों की समानता की घोषणा की गई थी।[2] मूलभूत अधिकारों में जाति, लिंग, सम्प्रदाय, धर्म आदि के भेदभाव मिटाकर सभी के लिए समान विकास अवसरों तथा समान अधिकारों का आश्वासन था। महिलाओं ने इस घोषणा का आगे बढकर स्वागत किया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन में महिलाओं की भागीदारी

असहयोग आन्दोलन में गाँधी जी के आह्वान पर महिलाओं ने घरों से निकलना प्रारम्भ कर दिया था, पर उनकी संख्या कम थी। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान भारी संख्या में महिलायें घरो की सुरक्षित सीमा को लांघकर सड़कों पर निकल पडीं। उनमें केवल मुट्ठी भर शिक्षित, संभ्रान्त परिवारों की महिलायें ही नहीं, अपितु सामान्य परिवारों की रूढिवादिता को भेदती हुई महिलायें भी थीं।

31 दिसम्बर, 1929 को रावी के तट पर तिरंगा फहराया गया।[3] भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की वर्किंग कमेटी ने 1930 को मध्य फरवरी में गाँधी जी को इस बात का अधिकार दिया कि वे अपनी इच्छा से जब जिस जगह से चाहें, सविनय अवज्ञा आन्दोलन का शुभारंभ कर

सकते हैं। गाँधी जी ने नमक कानून तोड़ने के लिए दांडी की ओर प्रस्थान करने से पूर्व अपनी 11 शर्तों को प्रकाशित किया और एक पत्र के माध्यम से वायसराय को यह लिख भेजा कि 'इन शर्तों को स्वीकार न करने की स्थिति में सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया जायेगा।'[4] परन्तु सरकार की ओर से कोई आश्वासन नहीं मिला। अतः 12 मार्च, 1930 को गाँधी जी ने 78 स्वयं सेवकों के साथ दाडी यात्रा प्रारम्भ की।[5] 6 अप्रैल, 1930 को प्रातः गाँधी जी ने नमक एकत्र किया और नमक कानून का उल्लंघन किया। इसका भारतीय जनता पर व्यापक प्रभाव दृष्टिगत हुआ। देशव्यापी सत्याग्रह और अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ हो गया।

12 मार्च को सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में 'सत्याग्रह दिवस' मनाया गया।[6] इलाहाबाद में पंडित मोती लाल नेहरू की अध्यक्षता में विशाल सभा हुई।[7] श्रीमती विजयलक्ष्मी पडित ने सभा में महिलाओं से अनुरोध करते हुए कहा कि—"आप से मेरी यही अपील है कि अपनी छोटी से छोटी वस्तु भी आन्दोलन की सफलता हेतु लगा दें। आपको भी आन्दोलन में काम करना है और अपने पति और घर के पुरुषों को साहस प्रदान कर उनके संकल्प को दृढतर बनाना है।"

बनारस विश्वविद्यालय में छात्र-छात्राओं की सम्मिलित सभा हुई। उसमें स्वाधीनता का प्रस्ताव दोहराते हुए कहा गया कि "विश्वविद्यालय के युवक और युवतियाँ कोई भी त्याग देश के लिए करने को उद्यत हैं।"[8] कानपुर जिले में स्त्री-पुरुषों ने निश्चय किया कि आवश्यकता पड़ने पर हम घरों में ताला लगा कर युद्ध क्षेत्र में उतर जायेंगे और जेल जायेंगे।[9] गाँधी जी के नेतृत्व में स्त्रियाँ अब इस

स्थिति में पहुँच गयी थीं कि पुरुषों के साथ सभाओ में भाग लेने लगीं और उनके संकल्पों में दृढ़ता और निष्ठा ध्वनित होने लगी।

7 अप्रैल, 1930 को 'संयुक्त प्रान्तीय सत्याग्रह समिति' ने रायबरेली में अपनी बैठक में विभिन्न स्थानों पर नमक कानून तोडने के लिए निर्देश दिये। साथ ही समिति ने विचार किया कि नमक कानून के अतिरिक्त विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार, शराब की दुकानों पर धरना देने और कर बन्दी को भी सत्याग्रह में सम्मिलित किया जा सकता है।[10]

महिलाओं से आन्दोलन में भाग लेने की अपील करते हुए प्रान्त के पत्र 'सत्याग्रह समाचार' ने लिखा—"देश की माताओं और बहनों! आप आगे बढ कर देश को आजादी दिलाने में मदद दें, क्योंकि आप की सहायता के बिना पराधीन देश स्वाधीनता प्राप्त नहीं कर सकता। भारत की वीर रमणियाँ तो अपनी वीरता और सहिष्णुता के लिए सदा से ही प्रसिद्ध हैं। कहाँ गये वे वीरता के दिन और कहाँ गयीं हमारी मातायें, जो अपने पुत्रों को ललकार कर युद्ध क्षेत्र में भेजा करती थीं। रणचण्डी दुर्गा की पूजा करने वाली देवियों! आज समय आ गया है कि आप अपनी शक्ति से भारत को आजाद करा दें।"[11]

8 अप्रैल, 1930 को रायबरेली जनपद के डलमऊ नामक कस्बे में महिलाओं ने पुरुषों के साथ घोषणा की कि वे इस स्थान पर गंगा के तट पर नमक बनायेंगी।[12] नमक बनाया गया। तिलक भवन में हजारों की संख्या में महिलायें श्रीमती कमला नेहरू के नेतृत्व में आन्दोलन को गति देने के लिए विद्यमान थीं। गोरखपुर से लेकर सहारनपुर तक पूरा उत्तर प्रदेश नमक मय हो गया। चूंकि नमक कानून केवल समुद्र तटीय प्रदेशों में ही तोड़े जा सकते थे, अतएव देश के

अन्य भागों में भिन्न-भिन्न प्रकार से कानूनों को तोडा गया। उत्तर प्रदेश में भूमिकर न देने का भी आन्दोलन चलाया गया।[13] 17 जून, 1930 को संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने ब्रिटेन निर्मित विभिन्न वस्तुओं के बहिष्कार का निश्चय किया।[14] इस आन्दोलन में महिलाओं ने दिखा दिया कि वे शक्ति और सामर्थ्य में किसी से कम नहीं हैं। जो महिलायें अकेले कभी अपनी देहरी से बाहर नहीं निकली थीं, वे प्रात काल से सन्ध्या तक शराब की दूकानों के सामने तथा विदेशी कपड़ों की दूकानों के आगे धरना देते हुए दिखाई पड़ती थीं। उत्तर प्रदेश में आन्दोलन व्यापक होता चला गया। सरकारी दमन चक्र से यह और भी तीव्र तथा संगठित हो गया। लखनऊ,[15] कानपुर,[16] बनारस,[17] मुरादाबाद,[18] बरेली,[19] हरिद्धार,[20] हाथरस,[21] फिरोजाबाद,[22] हरदोई,[23] गोरखपुर,[24] फैजाबाद,[25] बाराबंकी[26] और फर्रुखाबाद[27] में हुई महिलाओं की सभाओं में विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और स्वदेशी के प्रयोग पर बल दिया गया।

इलाहाबाद में नेहरू परिवार की महिलायें प्रतिदिन सभायें आयोजित कर रही थीं। इन सभाओं में बोलते हुए श्रीमती स्वरूप रानी नेहरू और उमा नेहरू ने स्त्रियों से तन, मन, धन से देश हित के लिए काम करने की अपील की।[28] एक जुलूस का नेतृत्व करते हुए स्वरूप रानी नेहरू पुलिस के दमन का शिकार हुईं। एक लाठी लगने से वे बेहोश हो गयीं।[29] कमला नेहरू ने भी जुलूसों का नेतृत्व किया और पूरे जोश के साथ इलाहाबाद में कांग्रेस को संगठित किया।[30] कृष्णा नेहरू विद्यार्थी संगठन का नेतृत्व कर रही थीं।[31] उत्तर प्रदेश के महिला नेतृत्व में मुकुन्द मालवीय का प्रमुख स्थान था। उन्होंने पुलिस के आदेशों की अवहेलना करते हुए इलाहाबाद में घण्टाघर पर एक सभा

बुलाई, जिसके आरोप में उन्हें गिरफ्तार करके एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा दी गई।[32]

लखनऊ में श्रीमती स्वरूप कुमारी बख्शी, श्रीमती सुनीति देवी मित्रा और कान्ती अवस्थी आन्दोलन का नेतृत्व कर रही थीं।[33] 12 मई, 1930 को श्रीमती सुनीति देवी मित्रा के नेतृत्व में 150 लोगों का जुलूस निकला। रास्ते में श्रीमती मित्रा, कान्ती देवी अवस्थी और अन्य महिलाओं को गिरफ्तार कर लिया गया। इसके बाद पुलिस ने जुलूस पर लाठी चार्ज किया।[34] लाठी चार्ज-गिरफ्तारी ने उनके उत्साह को ठंडा नहीं किया। लखनऊ में हुए लाठी चार्ज के विरोध में 'लखनऊ दिवस' मनाया गया। जुलूस निकाले गये व सभा का आयोजन किया गया।[35] महिलाओं के उत्साह व स्फूर्ति से सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश आन्दोलित था। दमन चक्र भी तेज था। महिलायें गाँव-गाँव मे देशगान गुंजित कर रही थीं।

इलाहाबाद में एक शानदार जुलूस 14 नवम्बर, 1930 (जवाहर दिवस) को निकाला गया। इसमें सैकडों की संख्या में महिलायें सम्मिलित हुईं। कमला नेहरू ने जलसे में जवाहर लाल का विद्रोही भाषण पढ़ा, उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।[36] उत्तर प्रदेश में उस दिन खूब लाठी चार्ज हुआ। गिरफ्तारियों की धूम मच गई। 14 नवम्बर, 1930 को ही 359 महिलायें गिरफ्तार हुई थीं।[37] इसी बीच 5 मार्च, 1931 को गाँधी-इर्विन समझौता हो गया।[38] गाँधी जी ने आन्दोलन स्थगित कर दिया।

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन की असफलता के पश्चात् कांग्रेस ने 3 जनवरी, 1932 को पुनः सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू कर

दिया। इस बार सरकारी दमन अधिक कठोर था। 4 जनवरी, 1932 को सरकार ने चार नये अध्यादेश जारी किये।[39] कांग्रेस को गैरकानूनी घोषित कर दिया। दफा 144 के अन्तर्गत सभाओं और जुलूसों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।[40]

सरकार द्वारा लागू निषेधाज्ञाओं के उल्लघन के लिए महिलाओं ने जुलूस निकाले, सभायें की और झण्डे फहराये। प्रतिबन्धों के बावजूद उत्साहपूर्वक स्वाधीनता दिवस मनाया गया और विभिन्न दिवसों के उपलक्ष्य में जुलूस निकाले गये। सरकार भी जुलूसो को तितर-बितर करने में पीछे नहीं रहीं।

महिलाओं ने इस आन्दोलन में आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाया था। इंग्लैण्ड की एक प्रमुख पत्रिका 'मानचेस्टर गार्डियन' ने अपने 22 जून, 1931 के अंक में इस आन्दोलन में स्त्रियों की भारी संख्या में भागीदारी को एक आश्चर्यजनक घटना के रूप में उल्लिखित किया।[41]

सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्त्रियों की मुक्ति की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। इस बात को उत्तर प्रदेश प्रान्त की पुलिस के एक अधिकारी ने इन शब्दों में स्वीकार किया था—"भारतीय नारी घरेलू और राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए एक साथ लड़ रही है और एक नारी की भाँति उसकी माँगें और तरीके नितांत अनुचित और अतार्किक हैं, किन्तु पुरुष पर उसका अत्यधिक प्रभाव है। अनेक राजभक्त अधिकारियों को जिनमें पुलिस अधिकारी भी सम्मिलित हैं, जितने ताने और गालियाँ अपनी महिला रिश्तेदारों से मिलती हैं, उतनी कहीं और से नहीं।"[42]

इस आन्दोलन के दौरान नागरिक स्वतन्त्रता का पूर्ण रूपेण दमन कर दिया गया, फिर भी महिलाओं के उत्साह में कमी नहीं आई थी।

गाँधी जी के आह्वान पर महिलाओं ने धरने का काम विशेष रूप से अपने हाथों में लिया। उत्तर प्रदेश की झुलसा देने वाली लू, धूप और वर्षा में उन्होंने सुबह से शाम तक विदेशी कपडों और शराब की दुकानों पर धरना दिया। महिलाओं ने केवल धरने का काम ही नहीं किया वरन् खादी धारण करके बड़ी संख्या में सभायें कीं, जुलूसों का नेतृत्व किया, प्रभात फेरियाँ निकालीं। सरकारी आदेशों की अवहेलना की। कईबार तो लाठी चार्ज का शिकार भी हुईं, परन्तु महिलाओं ने शान्तिपूर्वक इस दमन को सहा। आन्दोलन सम्बन्धी गतिविधियों मे भाग लेने के कारण अनेक महिलाओं को कुछ हफ्ते से लेकर एक वर्ष की कैद भी हुई। स्त्रियों ने इससे पूर्व कभी भी इतनी बड़ी संख्या में आन्दोलन में भाग नहीं लिया था। इंग्लैण्ड के मजदूर दल के सुप्रसिद्ध पत्रकार और लेखक श्री वेल्सफोर्ड जो इस समय भारत में थे, भारतीय स्त्रियों की जागृति को देखकर अत्यधिक प्रभावित हुए। वह कहते हैं—"इस आश्चर्यजनक आन्दोलन में जो सबसे आश्चर्यजनकबात है, वह है भारतीय स्त्रियों की अभूतपूर्व जागृति। शताब्दियों की गुलामी के बाद वे स्वाधीनता के संग्राम में आई हैं और यदि इस संग्राम द्वारा उन्होंने सम्पूर्ण भारत के लिए स्वराज्य नहीं प्राप्त कर लिया तो कम से कम अपना उद्धार तो अवश्य कर लिया है।"[43]

इस आन्दोलन की एक प्रमुख विशेषता यह रही है कि केवल उच्च वर्गीय और सम्पन्न परिवारों की महिलायें ही आगे नहीं आयीं, बल्कि मध्यम वर्गीय परिवारों की महिलायें भी आगे आईं। इस

आन्दोलन में ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं ने भी बडे उत्साह व साहस के साथ अपनी कर्मठता और उत्साह का परिचय दिया था। आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका के विषय में गाँधी जी ने कहा—"राष्ट्रीय लडाई में जनता ने और विशेष कर महिलाओं ने जो त्याग किया है, उसे देखकर संसार को आश्चर्य हुआ है। स्त्रियों के बारे में कहा जाता है कि वे सर्वदा अज्ञान में हैं और परदे में रहती हैं, परन्तु राष्ट्रीय पुकार पर अपने बच्चों की चिन्ता न करके आन्दोलन में सम्मिलित हुई हैं। इसके साथ ही उन्होंने अपने पतियों के आन्दोलन मे भाग लेने मे बाधा उपस्थित नहीं की। भारत की स्त्रियाँ अपने त्याग के कारण तीन-चार इंच ऊपर उठ गई हैं।"[44]

अब इतिहास की धारा में महिलायें इतिहास रच रही थीं। उत्तर प्रदेश की महिलाओं के लिए यह आन्दोलन उस समय तक के आन्दोलनों में सबसे अधिक मुक्तिदायी था और कहा जा सकता है कि इसी आन्दोलन के द्वारा महिलाओं ने जन-जीवन में अपना स्थान पा लिया।

वैधानिक प्रक्रिया और महिलायें

भारत में शासन सुधार के उद्देश्य से सन् 1935 में ब्रिटिश संसद ने 'भारतीय शासन अधिनियम' पारित किया, जिसके अन्तर्गत प्रान्तीय स्वायत्तता की स्थापना हुई।[45] इस अधिनियम के द्वारा भारतीय महिलाओं को भी प्रान्तीय विधान मण्डल के लिए होने वाले चुनाव में खड़े होने का अवसर प्राप्त हुआ। इसके द्वारा भारतीय महिलाओं को विस्तृत आधार पर मताधिकार प्राप्त हुआ। इस एक्ट के अनुसार विधान

सभा में महिलाओं के लिए कुछ स्थान सुरक्षित कर दिये गये थे। संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) में छः महिला निर्वाचन क्षेत्र बनाये गये। जिनमें से बनारस शहर, कानपुर (उत्तर पूर्व), मेरठ (उत्तर), फैजाबाद (पश्चिम) हिन्दू महिलाओं के लिए और लखनऊ व मुरादाबाद मुस्लिम महिलाओं के लिए आरक्षित किये गये।[46] इसके अतिरिक्त वे सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों से भी चुनाव लड़ सकती थीं। विधान परिषद में उनके लिए कोई स्थान सुरक्षित नहीं था, परन्तु वे चुनाव में खडी हो सकती थीं।

1935 के अधिनियम के तहत 1937 के प्रारम्भ में चुनाव हुए। उत्तर प्रदेश में विधान सभा चुनाव की तिथि 7-8 फरवरी, 1937 थी।[47] 48 जिलों में 2207 पोलिंग स्टेशन और 11,000 पोलिंग बूथ थे, जहाँ महिलाओं की सुविधा के लिए महिला पोलिंग ऑफीसर व महिला प्रेसाइडिंग ऑफीसर नियुक्त की गई थीं। कहीं-कहीं पर महिलाओं के लिए अलग बूथ भी थे।[48]

राजनीतिक रूप से जागरूक हो चुकी उत्तर प्रदेश की महिलाओं ने चुनाव लड़ने की इस चुनौती को स्वीकार किया। श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित कानपुर के बिल्होर क्षेत्र से खड़ी हुईं जहाँ श्रीमती कैलाश श्रीवास्तव से उनका कड़ा संघर्ष हुआ। मेरठ (उत्तर) में काग्रेस के टिकट पर प्रकाशवती सूद और उनके विरोध में निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में बदन कौर खड़ी हुईं। फैजाबाद (पश्चिम) में कांग्रेस के टिकट पर लक्ष्मी देवी व उनके विरुद्ध रानी भुवनेश्वरी देवी खडी हुईं। बेगम हबीबुल्ला लखनऊ में मुस्लिम लीग की और मर्जादा बानो कांग्रेस की उम्मीदवार थीं।[49]

सम्पूर्ण प्रान्त में मतदान स्थलों पर महिलाओं में अभूतपूर्व उत्साह देखा गया। मेरठ में महिला मतदाताओं का प्रतिशत पुरुषों से अधिक रहा।[50] इस चुनाव का परिणाम इस प्रकार रहा[51]—

दल	प्राप्त स्थान	महिला सदस्य
कांग्रेस	134	9
मुस्लिम लीग	27	1
इंडेपेंडेण्ट मुसलमान	30	1
इंडेपेंडेण्ट हिन्दू	10	–
नेशनल एग्रीकल्चरिस्ट पार्टी	16	2
अन्य	11	–
कुल	228	13

इस चुनाव में महिलाओं के लिए केवल 6 स्थान ही आरक्षित किये गये थे, परन्तु उन्होंने महिला निर्वाचन क्षेत्रों के अतिरिक्त पुरुषों के निर्वाचन क्षेत्रों से भी चुनाव लड़ा और जीत हासिल की। संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) की विधानसभा के लिए निर्वाचित महिलायें निम्नलिखित थीं[52]—

नाम	दल	चुनाव क्षेत्र
1. श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित	कांग्रेस	बिल्होर, कानपुर (पू.)
2. श्रीमती शर्मदा त्यागी	कांग्रेस	देहरादून
3. श्रीमती सत्यवती सनतिका	कांग्रेस	मुजफ्फरनगर (प.)
4. श्रीमती उमा नेहरू	कांग्रेस	फर्रुखाबाद (उ.)
5. श्रीमती सुनीति देवी मित्रा	कांग्रेस	रायबरेली (उ.पू.)
6. श्रीमती लक्ष्मी देवी	कांग्रेस	फैजाबाद (प.)
7. श्रीमती प्रकाशवती सूद	कांग्रेस	मेरठ (उ.)
8. श्रीमती विद्यावती राठौर	कांग्रेस	एटा (द.)
9. डा. बोलर थंगम्मा	कांग्रेस	बनारस
10. रामनगर की राजमाता पार्वती कुमारी	नेश. एग्रीकल्चरिस्ट पा.	बाराबंकी (उ.)
11. महारानी जगदम्बा देवी	"	फैजाबाद
12. बेगम हबीबुल्ला	मुस्लिम लीग	लखनऊ
13. बेगम राशिद हुसैन	मुस्लिम लीग	मुरादाबाद

विधान परिषद के लिए एकमात्र निर्वाचित महिला बेगम ऐजाज़ रसूल थीं जो सीतापुर, हरदोई और खीरी से विजयी हुई थीं।[53]

गवर्नर विधान परिषद् में 6 से 8 सदस्य नामजद कर सकता था। अतः मीना चन्द्रावती गुप्ता और लेडी वजीर हसन गवर्नर द्वारा संयुक्त प्रान्त विधान परिषद् की सदस्य नामज़द की गयीं।[54] बेगम ऐजाज़ रसूल निर्विरोध सदन की डिप्टी स्पीकर भी चुन ली गयीं।[55]

24 जुलाई, 1937 को गोविन्द बल्लभ पन्त के नेतृत्व में संयुक्त प्रान्त में नये मन्त्रिमण्डल का गठन हुआ। श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित को पहली महिला कैबिनेट मंत्री बनने का गौरव प्राप्त हुआ। उन्हें स्वायत्त शासन और स्वास्थ्य मंत्री का पद प्राप्त हुआ।[56] एम.एल.ए. और एम.एल.सी. के रूप में महिलायें केवल मूक दर्शक नहीं बनी रहीं वरन् उन्होंने विधान मण्डल की कार्यवाहियों में सक्रिय रूप से भाग लिया, विभिन्न विषयों पर प्रश्न उठाये व अपने विचार प्रस्तुत किये। विधान मण्डल में महिलाओं की उपस्थिति ने उत्तर प्रदेश की महिलाओं के लिए प्रेरणा का कार्य किया। कांग्रेसी मंत्रिमण्डल तत्परता से कार्य कर रहा था। इसी बीच द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया। भारत के वायसराय ने भारत के निर्वाचित प्रतिनिधियों से परामर्श किये बगैर भारत की ओर से युद्ध की घोषणा कर दी, यह निर्वाचित सरकारों का अपमान था। अतः 22 अक्टूबर, 1939 को वर्धा में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने एक प्रस्ताव पारित करके सभी कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों से त्यागपत्र देने की सिफारिश की।[57] 30 अक्टूबर, 1939 को गोविन्द बल्लभ पन्त ने अपने मंत्रिमण्डल का त्यागपत्र गवर्नर के पास भेज दिया जो 3 नवम्बर को स्वीकृत हो गया।[58]

1937 के चुनावों में उत्तर प्रदेश की नारी ने जागरूक नारी की एक नई छवि प्रस्तुत की और अपनी राजनीतिक और

प्रशासनिक जागरुकता का परिचय दिया। वे राष्ट्र के विकास मे नारी की भूमिका के प्रति सजग हो गयी थीं। जागरूक महिलायें सार्वजनिक जीवन में भाग लेने लगी थीं तथा वे हर क्षेत्र में अपना दायित्व निभाने की ओर सचेत हो गयी थीं।

शैक्षिक स्तर

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में स्त्री शिक्षा का श्रीगणेश हुआ और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उसमें विशेष उन्नति हुई। इन वर्षों में स्त्री-समाज की स्थिति में परिवर्तन आया। प्रारम्भ में लोग अपनी लड़कियों को स्कूल भेजने से झिझकते थे। वे समझते थे कि स्त्रियों को घर पर रह कर साक्षर हो जाना तथा पढ़ने-लिखने की साधारण योग्यता प्राप्त कर लेना पर्याप्त है। किन्तु धीरे-धीरे समाज सुधारकों के प्रयास से लड़कियों का स्कूलों में जाना प्रारम्भ हो गया। कुछ वर्षों में स्त्री शिक्षा का काफी प्रचार हुआ, किन्तु फिर भी स्त्रियों की कुल संख्या के अनुपात में साक्षर स्त्रियों की संख्या बहुत कम थी।

शिक्षा के स्तर में सरकारी प्रयासों के बावजूद भी सुधार नहीं हो पा रहा था। संयुक्त प्रान्त सरकार ने जनवरी 1932 में श्रीमती कैलाश श्रीवास्तव की अध्यक्षता में स्त्री शिक्षा के लिए सुझाव देने के लिए एक समिति का गठन किया।[59] समिति के सदस्यों में बेगम हबीबुल्ला व कुमारी टी.जे. गाँधी प्रमुख थीं। यह समिति कानपुर में शिक्षा मंत्री श्री जे.पी. श्रीवास्तव से मिली व स्त्री शिक्षा के प्रसार के विषय में अपने विचार प्रस्तुत किये, जिनमें स्त्री शिक्षा हेतु सरकार द्वार

अधिक अनुदान देना, सहशिक्षा की सुविधा देना, शारीरिक प्रशिक्षण की व्यवस्था करना प्रमुख थे।[60]

'चाँद' पत्रिका संयुक्त प्रान्त में स्त्रियों की जागृति के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध हुई। उसने समय-समय पर देश-विदेश की नारियों के उत्थान-पतन का ब्यौरा प्रस्तुत किया। अक्टूबर 1933 में चाँद के लेख 'संयुक्त प्रान्त में स्त्री शिक्षा' का आरम्भ इन शब्दों में हुआ था-"भारतीय स्त्रियों की शिक्षा का प्रश्न अब वाद-विवाद की सीमा का अतिक्रमण करके व्यवहारिक क्षेत्र में पहुँच गया है। फलतः प्रश्न केवल यह रह गया है कि स्त्रियों की शिक्षा कैसी हो और उसके लिए क्या-क्या प्रबन्ध किया जाये। कितने ही लोग लड़कियों को बिल्कुल लड़कों की सी शिक्षा दिलाने के पक्षपाती हैं ताकि वे सब प्रकार के व्यवसायों को सफलतापूर्वक कर सकें। परन्तु इसके विपरीत कई लोग ऐसे भी हैं, जो उनको ऐसी शिक्षा दिलाना चाहते हैं जो विशेष रूप से गृहस्थी के संचालन में उपयोगी सिद्ध हो। इसी प्रकार का एक लेख पैम्पफ्लेट के रूप में हाल ही में एक स्थानीय विदुषी महिला कु एस. आगा ने प्रकाशित कराया, जिसमें लड़कियों की शिक्षा का विवेचन करते हुए संयुक्त प्रान्त कन्या पाठशालाओं पर भी बहुत कुछ प्रकाश डाला गया है। वास्तव में यह बड़े खेद व लज्जा की बात है कि संयुक्त प्रान्त विस्तार, जनसंख्या तथा महत्व की दृष्टि से एक प्रधान प्रान्त होते हुए भी स्त्री शिक्षा जैसे परमावश्यक विषय में भारत के अधिकांश प्रान्तों से पिछड़ा हुआ है। अब तक इस त्रुटि का मुख्य कारण यहाँ के निवासियों की मानसिक संकीर्णता अथवा परिवतर्नशीलता की कमी समझा जाता था, पर कुमारी आगा ने सरकारी रिपोर्टों के अंकों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि इस त्रुटि का अधिकांश उत्तरदायित्व यहाँ के निवासियों पर

नहीं वरन् सरकार या उसके शिक्षा विभाग पर है। अभी तक इस प्रान्त के सरकारी अधिकारियों ने स्त्री शिक्षा की उन्नति के लिए बहुत कम चेष्टा की है और कदाचित् वे इसकी आवश्यकता का भली प्रकार अनुभव नहीं करते। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि शिक्षा विभाग के 3 करोड 89 लाख के बजट में से लड़कियों की शिक्षा के लिए केवल 38 लाख रुपये खर्च किये गये।"[61]

1935-36 में प्रथम बार प्रान्त में कन्याओं की अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्रारम्भ हुई।[62] बड़े पैमाने पर तो अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा अभी नहीं लायी जा सकती थी, परन्तु एक जिला परिषद में यह प्रारम्भ की गयी। 1937 में गठित हुई कांग्रेस सरकार ने गाँधी जी की विचारधारा पर आधारित बुनियादी शिक्षा का कार्यक्रम चलाया।

स्त्री शिक्षा पर विचार करने के लिए 27 दिसम्बर 1937 को कलकत्ते में 'ऑल इण्डिया एजुकेशनल कांफ्रेंस' का तेरहवाँ सम्मेलन हुआ।[63] मार्च 1938 को संयुक्त प्रान्त सरकार ने आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की,[64] जिसने फरवरी 1939 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। रिपोर्ट के सातवें अध्याय में स्त्री शिक्षा की स्थिति व सुधार के लिए सुझाव दिये गये हैं। रिपोर्ट के अनुसार प्रान्त की कुल स्त्री जनसंख्या में से मात्र 1.02 प्रतिशत लड़कियाँ ही किसी न किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर रही थीं।[65] देश के मुख्य प्रान्तों में यदि स्त्री शिक्षा का प्रतिशत आंका जाये तो संयुक्त प्रान्त सबसे निम्न स्थिति में था[66]—

प्रान्त	स्त्री शिक्षा का प्रतिशत
बंगाल	2.7
मद्रास	2.7
बम्बई	4.3
पंजाब	1.5
संयुक्त प्रान्त	1.02

रिपोर्ट के अनुसार "लोगों की स्त्री शिक्षा के प्रति विचारधारा बदल रही थी। अभिभावक भी विपरीत न होकर स्त्री शिक्षा के लिए मित्रवत हो गये हैं। पर्दे का प्रतिरोध भी कम हो गया है।"[67]

इसमें सन्देह नहीं था कि अन्य प्रान्तों की तुलना में संयुक्त प्रान्त में स्त्री शिक्षा कम थी। संयुक्त प्रान्त सरकार व केन्द्रीय सरकार द्वारा समय-समय पर नियुक्त समितियों ने स्त्रियों की शिक्षा में सुधार करने के लिए सुझाव प्रस्तुत किये पर उनमें से बहुत कम ही क्रियान्वित हो पाये। देश में स्त्री शिक्षा की दयनीय स्थिति में सुधार के लिए धन की अधिक आवश्यकता थी। प्राप्त हुआ धन भी उचित रूप से व्यय नहीं किया जाता था।

सामान्यतया कम उम्र में विवाह हो जाने के कारण कन्यायें बमुश्किल अपनी प्राथमिक शिक्षा ही प्राप्त कर पाती थीं। माता-पिता अपनी संकीर्ण विचारधारा के कारण या तो शिक्षा प्रारम्भ ही नहीं

करवाते थे और यदि प्रवेश दिला भी देते थे तो 1, 2 कक्षा के बाद पढ़ाई बन्द करवा देते थे। माध्यमिक शिक्षा बहुत कम लड़कियाँ ही प्राप्त कर पाती थीं और उच्च शिक्षा में तो लड़कियों का प्रवेश न के बराबर था। 1932 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में मात्र 25 छात्रायें,[68] लखनऊ के इसाबेला थोवर्न कालेज में कुल 48 छात्रायें और बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्ययनरत कुल 2,993 छात्रों में 80 महिलायें थीं।[69] 1931-32 में कन्या कालेजों की संख्या 6 व छात्राओं की संख्या 270 थी।[70] 1937 में इनकी संख्या 798 तक पहुँच गयी थी। स्त्रियाँ मेडिकल, वकालत, कृषि विज्ञान, इजीनियरिंग, अध्यापिका प्रशिक्षण आदि की व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने की ओर उन्मुख हो गयी थीं। यद्यपि उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाली लड़कियों की संख्या बहुत कम थी, फिर भी इन मुट्ठी भर लड़कियों ने अनेक द्वार खोले और इसी का यह सुपरिणाम है कि पुरुषों के एकाधिकार में माने जाने वाले सभी कार्यक्षेत्रों में स्त्रियाँ बराबरी से भाग लेने लगी थीं और वकील, डॉक्टर, इंजीनियर, अध्यापिका, मंत्री, लेखिका आदि के रूप में अपनी नयी भूमिका की ओर अग्रसर हुईं।

साहित्य के क्षेत्र में महिलायें

1930 के दशक में, उत्तर प्रदेश में साहित्य के क्षेत्र में भी अनेक स्त्रियाँ सामने आईं, जिनमें महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान प्रमुख थीं। हिन्दी की स्वाभाविक कवियित्री व कहानी लेखिका सुभद्रा कुमारी चौहान ने अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन (काशी) के अन्तर्गत हुए महिला साहितय सम्मेलन[71] के अध्यक्ष पद से दिये गये भाषण में शिक्षा, समाज, राजनीति तथा साहित्य के क्षेत्र में

स्त्रियों की जागृति को रेखांकित किया। साहित्य के क्षेत्र में महिलाओं की उच्चकोटि की साहित्यकला की प्रशंसा की। उन्होंने महादेवी वर्मा को गीति काव्य के प्रवर्तकों में से एक मानते हुए कहा—"महादेवी की आध्यात्मिक प्रेमाभिव्यंजना हमारे वर्तमान साहित्य की एक विशेषता है। यह ऐसी विशेषता है जो उनके गीतों को अपने माधुर्य, कोमलता और विचार सूक्ष्मता के कारण किसी भी भाषा के साहित्य के लिए गौरव की वस्तु बना सकती है।"

सुभद्रा कुमारी चौहान ने साहित्य की अभिवृद्धि में लगी अन्य महिलाओं का नामोल्लेख किया, जिनमें प्रमुख हैं[72]—श्रीमती तोरन देवी 'लली', तारा देवी पाण्डेय, रामेश्वरी देवी 'चकोरी', रामेश्वरी गोयल, शकुन्तला देवी खरे, होमवती, कमला कुमारी, प्रियंवदा देवी, राजकुमारी चौहान, राजराजेश्वरी 'नलिनी', रत्न कुमारी, हीरा देवी चतुर्वेदी, सूर्यदेवी दीक्षित, गोपाल देवी, शकुन्तला श्रीवास्तव, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, शिवरानी देवी (धर्मपत्नी प्रेमचन्द जी) आदि। स्त्री कवि सम्मेलनों का आयोजन होने लगा था। इसी प्रकार का एक कवि सम्मेलन[72.1] इलाहाबाद में प्रयाग महिला विद्यापीठ में अप्रैल, 1933 में हुआ। यह आयोजन हिन्दी के क्षेत्र में बिल्कुल अभिनव था। इस कवि सम्मेलन में चालीस स्त्री कवियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन का सभापतित्व श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान ने किया।

1930 के दशक में उर्दू साहित्य की अभिवृद्धि में डा. राशिद जहान महत्वपूर्ण थीं। वे 1933 में प्रतिबन्धित की गई उर्दू पुस्तक 'अंगारे' की सहलेखिका थीं।[73] 1930 के दशक के अंत में उर्दू उपन्यास लेखन में इस्मत चुगताई ने प्रवेश किया। प्रारम्भ में रूमानी

उपन्यास लिखने वाली यह विनम्र लेखिका बाद में क्रान्तिकारी सामाजिक लेखक के रूप में परिवर्तित हो गईं। हिजाब इम्तियाज अली एक प्रसिद्ध उर्दू लेखिका थीं, जो 1936 में भारत की पहली महिला विमान चालक भी बनीं।[74] मुस्लिम महिलायें बड़ी संख्या में उपन्यास व छोटी कहानियाँ लिख रही थीं।

औपन्यासिक साहित्य में नारी

इस काल (1930–40) की साहित्यिक रचनाओं में स्त्री समुदाय की जागरुकता के पहलू प्रतिबिम्बित हुए हैं। इस काल में अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह करने वाली आधुनिक चेतना से प्रभावित भारतीय नारी पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनीतिक धरातलों पर संघर्ष करती दृष्टिगत हुई। नारी पति की दासता से मुक्त होकर समाज तथा राष्ट्र में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व पाने के लिए संघर्षशील थी। यही इस काल के औपन्यासिक चरित्रों द्वारा उपन्यासकार प्रदर्शित करते हैं। इस युग के औपन्यासिक साहित्य में सर्वप्रथम विद्रोही नारी के दर्शन होते हैं। नारी गृहिणी पद की सीमा से बाहर भी समाज, देश, राजनीति के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को समझने लगी थी। इस काल में आधुनिक भारतीय नारी तीन विभिन्न धरातलों पर पति के विशेषाधिकारों को चुनौती देती है। पारिवारिक धरातल पर पति के विशेषाधिकारो को चुनौती देती है, सामाजिक धरातल पर रूढिवादी सामाजिक मान्यताओं को अस्वीकार करती है तथा राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय सहयोग तथा नेतृत्व देकर विद्रोही नारी का नवीन चित्र प्रस्तुत करती है।

भगवती प्रसाद वाजपेयी रचित 'लालिमा' की सन्ध्या तथा जैनेन्द्र कुमार के 'त्यागपत्र' की मृणाल पति से तिरस्कृत एवं अपमानित होने पर परम्परागत हिन्दू नारी की भांति गिडगिड़ाती नहीं है और न ही अपनी भावनाओं, विचारों का दमन करती है, अपितु वे पति के विशेषाधिकारों को चुनौती देती हैं तथा विद्रोह करती हैं। उनके चरित्र में स्वाभिमान और दृढ़ता है। 'कुण्डलीचक्र' (वृन्दावन लाल वर्मा) की पूना, 'लगन' (वृन्दावन लाल वर्मा) की रामा, 'संगम' (वृन्दावन लाल वर्मा) की गंगा, 'गोदान' (प्रेमचन्द) की सोना, सभी नारियाँ सामाजिक रूढिवादी मान्यताओं के प्रति विद्रोह करती हैं।

जैनेन्द्र ने 'परख' में विधवा समस्या को मनोवैज्ञानिक कसौटी पर मूल्यांकित किया।[75] विधवा समस्या ने इस काल के समाज को अत्यधिक आन्दोलित किया। 'प्रेम की भेंट' की विधवा उजियारी,[76] 'संगम' की विधवा गंगा,[77] इसी आन्दोलित नारी-समुदाय की प्रतिनिधि हैं। 'अलका' की वीणा[78] ने इसी समस्या का प्रतिनिधित्व किया है और विवाह करके सशक्त अभिव्यक्ति भी दी है।

भारतीय समाज में अनमेल विवाह भी एक भयंकर सामाजिक दोष रहा। 'त्यागपत्र' की मृणाल[79] ने इस सामाजिक समस्या की भयानकता को प्रकट किया है तथा स्त्री समुदाय को जागृत करते हुए पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह का आह्वान किया है। वह हमारी सामाजिक व्यवस्था में नारी की स्थिति पर प्रश्न करती है।

वेश्या समस्या के प्रति भी इस काल में समाज जागृत दृष्टिगत होता है। 'माँ' उपन्यास में विश्वम्भर नाथ कौशिक ने वैचारिक प्रगति की दृष्टि से वेश्या समस्या का उल्लेख करते हुए निर्धनता और

आर्थिक संरक्षण के अभाव को इसका मूल कारण माना है।[80] इस काल में पहली बार मानवतावादी धरातल पर वेश्या का मूल्यांकन किया गया। 'तीन वर्ष' की वेश्या सरोज[81] ने मानसिक मूल्यों को प्रतिष्ठापित करके समाज को सोचने के लिए प्रेरित किया। 'अप्सरा' की कनक[82] के माध्यम से निराला जी ने वेश्या समस्या का समुचित उन्मूलन विवाह के रूप में प्रस्तुत किया है।

'कुण्डलीचक्र' की पूना[83] और 'भिखारिणी' की यशोदा[84] के द्वारा बहुपत्नी समस्या को भी उठाया गया। ये किसी भी शर्त पर दूसरी पत्नी बनने को तैयार नहीं हुईं और इस अमानवीय प्रथा के विरुद्ध संघर्ष किया।

नारी के साम्पत्तिक अधिकारों के प्रश्न पर भी इस काल का स्त्री समुदाय जागृत हुआ और पितृसत्तात्मक संस्कृति में विद्यमान भेदभाव के प्रति जागरूक हुआ। 'गबन', 'गोदान', 'संगम' में इस समस्या को विवेचित करते हुए न्याय व्यवस्था में परिवर्तन करने की माँग की गई है।

भारतीय समाज में सदैव ही नारी को गृहिणी पद से सुशोभित किया जाता रहा है। पहली बार हिन्दी उपन्यास साहित्य में जैनेन्द्र कुमार ने 'सुनीता' में नारी के घर और बाहर की समस्या प्रस्तुत की है। सुनीता ने गृहस्थ-धर्म और राष्ट्र धर्म के प्रति नारी समुदाय को सोचने की चेतना प्रदान की है।[85]

बीसवीं शताब्दी में भारतीय समाज, संस्कृति एवं सम्पूर्ण जीवनधारा तीव्र संक्रमण की स्थिति में रही, अतः वैवाहिक प्रश्न भी

विवादास्पद होने लगे। जिन परिवारों में पिछली पीढी अशिक्षित तथा नवीन पीढ़ी शिक्षित थी, वहाँ यह प्रश्न और अधिक गंभीर बन गया। 'वरदान' में लेखक ने स्पष्ट रूप से यह विचार प्रतिपादित किया है कि वैभव तथा कुलीनता से अधिक महत्वपूर्ण जीवनसाथी का मूल्य है। वैवाहिक चुनाव के मानदण्ड को बदलना होगा।[86] परिवार के स्थान पर व्यक्ति की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। 'तितली' की तितली भी विवाह का आधार धन-सम्पत्ति को नहीं मानती, अपितु प्रेम को स्वीकार करती है।[87] 'गोदान' की सरोज तथा 'कर्मभूमि' की सकीना के प्रेम-प्रसंग इसी तथ्य के प्रतीक हैं।

बीसवीं शताब्दी के इस काल में भारतीय जीवन का केन्द्रविन्दु राष्ट्रीय आन्दोलन था। भारतीय स्त्री अब पुरुष के राजनीतिक जीवन में सहयोगी बन गई थी। 'प्रेमाश्रम' की विलासी, 'गबन' की जालपा, 'कर्मभूमि' की सुखदा, मुन्नी, सोनाली तथा 'गोदान' की धनिया ऐसी ही नारी चरित्र हैं, जो आन्दोलन को जन्म देती हैं व नेतृत्व करती दृष्टिगत होती हैं। 'कर्मभूमि' उपन्यास पर सविनय अवज्ञा आन्दोलन की गहरी छाप है, इसका प्रकाशन 1932 में हुआ था।

अन्ततोगत्वा यह कहना अधिक युक्ति संगत है कि इस काल में पहली बार हिन्दी साहित्य के उपन्यास कथानकों में स्त्री अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाती है। पहली बार पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्र में विद्रोही नारी का आगमन होता है।

महिलायें और कानून

बाल-विवाह अभी भी बडी संख्या में होते थे। बाल-विवाह के परिणामस्वरूप बढती सामाजिक समस्याओं और विधवाओं की बढती संख्या ने व्यवस्था को आन्दोलित किया, जिसके फलस्वरूप विवाह सम्बन्धी सुधारों के प्रश्न पर जाँच करने के लिए जून 1928 में 'एज ऑफ कन्सेंट कमिटी' बैठी। इसकी रिपोर्ट निकलने के बाद राय साहब हर विलास शारदा का 'बाल विवाह बिल' 1930 में पास हुआ।[88] इसका अर्थ स्त्री शिक्षा मे उन्नति तथा व्यक्तित्व विकास के अवसरों में वृद्धि था। लेकिन परिवर्तन विरोधी वर्गों में इस कानून का बडा विरोध हुआ, वास्तविक कार्यवाही में यह बहुत अभीष्ट फलदायक सिद्ध नहीं हुआ। शारदा-एक्ट के आने के पूर्व उत्तर प्रदेश में बड़ी संख्या में बाल-विवाह सम्पन्न हुए। इसके फलस्वरूप 1931 में 0-15 वर्ष के लडकोंऔर लड़कियों के विवाह की संख्या मे बहुत वृद्धि हुई।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के फैजाबाद, सुल्तानपुर, प्रतापगढ, बस्ती, इलाहाबाद, जौनपुर और आजमगढ में बाल-विवाह के आंकडे सर्वाधिक हैं और पश्चिमी सीमा की ओर बढने पर यह अनुपात कम होता जाता है। जैसा कि मानचित्र से स्पष्ट है।[90]
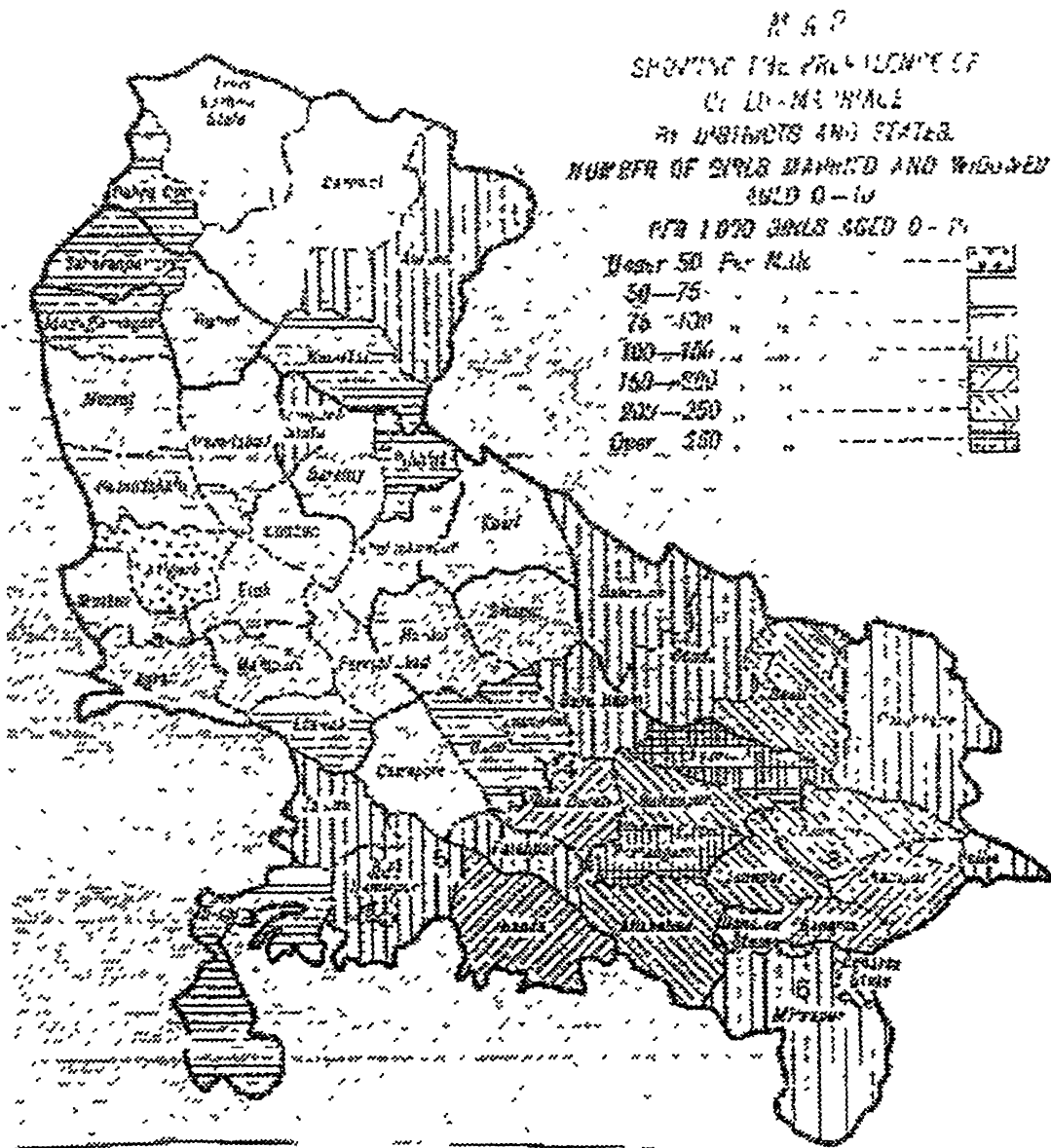
उत्तर प्रदेश में शारदा-एक्ट को लाये जाने से पूर्व हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्प्रदायों में, विशेष रूप से पूर्वी प्रान्त में, बड़ी सख्या में बाल-विवाह सम्पन्न हुए। इसके फलस्वरूप 10 वर्ष से कम आयु के विवाहितों और विधवाओं की संख्या में इतनी अधिक वृद्धि हुई, जितनी आनुपातिक रूप से पिछले 40 दशकों मे नहीं हुई थी।[91]

1931 में उत्तर प्रदेश में विधवाओं की संख्या प्रति हजार 151 तक हो गयी थीं।[92]

1930 के दशक में 'ऑल इण्डिया विमेन्स कांफ्रेंस' का नेतृत्व कांग्रेस के अधिक निकट आ गया था और उन्होंने अपना लक्ष्य स्त्रियों व पुरुषों के समानाधिकार को बना लिया था। इस दशक में मुख्य रूप से राजकुमारी अमृत कौर संगठन की प्रवक्ता रहीं।[93] सम्पत्ति में स्त्रियों को अधिकार प्राप्त न होना हिन्दू स्त्रियों की उपेक्षित स्थिति का एक महत्वपूर्ण कारण था। आल इण्डिया वीमेन्स कांफ्रेंस के व्यापक प्रचार और सी.डी. देशमुख जैसे पुरुषों के सहयोग के कारण 1937 में 'हिन्दू महिला सम्पत्ति अधिकार अधिनियम' पारित हुआ। यह अधिनियम महिलाओं को सम्पत्ति के सम्बन्ध में बेहतर अधिकार देने के विषय में था। इसके द्वारा विधवा को सम्पत्ति में उसके पुत्र के बराबर अधिकार दिये गये, उस स्थिति में यदि वसीयत करने पूर्व ही पुरुष की मृत्यु हो जाये।

1938 में उत्तर प्रदेश की असेम्बली में श्रीयुत् वंशगोपाल (एम.एल.ए.) ने दहेज प्रथा को रोकने के लिए एक बिल प्रस्तुत किया।[94] यह बिल उत्तर प्रदेश के समस्त वर्ण, जाति, उपजाति और समाज के हिन्दुओं पर लागू होता था।

1934 में एक कानून बनाकर महिलाओं के कार्य करने के घण्टों को कम करके 10 घण्टे प्रतिदिन कर दिया गया।[95]

सन् 1939 से पूर्व मुस्लिम महिलाओं की स्थिति तलाक के मामले में बहुत ही बदतर थी। तलाक देना पुरुष का एक निरंकुश

अधिकार था। वह जब चाहे पत्नी को तीन शब्दों का उच्चारण कर तलाक दे सकता था। पति के लिए पत्नी को तलाक देना आसान होने से तलाक एक आम बात बन गई थी। पहली बार 1939 में 'मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम' के द्वारा पत्नी को भी तलाक देने सम्बन्धी कुछ अधिकार प्रदान किये गये।[96]

महिलायें और रोजगार

स्त्रियों की दयनीय स्थिति का एक महत्वपूर्ण कारण था पुरुषों पर उनकी आर्थिक निर्भरता। जहाँ तक जीविका का सम्बन्ध है, स्त्रियाँ अधिकाँशतः पराधीन और पराश्रिता रहती थीं। वे सदा से अपने पिता, भाई, पति अथवा पुत्र की कमाई पर ही आश्रित रही थीं। यद्यपि निम्न तबके की स्त्रियाँ कृषि व औद्योगिक श्रमिकों तथा घरेलू नौकरानियों के रूप मे कार्य करती थीं, लेकिन मध्यम व उच्च वर्ग की स्त्रियाँ पूर्ण रूप से पुरुषों पर ही निर्भर थीं। 1930 के दशक तक शिक्षा के प्रसार के कारण उत्तर प्रदेश में मध्यम व उच्च वर्ग की स्त्रियाँ भी आर्थिक आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर होने लगी थीं। मई 1937में 'चाँद' में छपे एक लेख के अनुसार–"जब से स्त्री शिक्षा का प्रचार बढ़ा है, स्त्रियों में जागृति उत्पन्न हो गई है। आधुनिक काल में स्त्री शिक्षा का प्रचार हुए अभी अधिक समय नहीं हुआ है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में इसका श्रीगणेश हुआ और बीसवीं शताब्दी में ही इसमें उन्नति हुई है। इन थोड़े से दिनों में स्त्री समाज की स्थिति में परिवर्तन हो गया है।....कुछ समय पूर्व लोगों को यह अनुमान भी नहीं हो सकता था कि स्त्रियाँ भी जीविकोपार्जन कर सकती हैं, किन्तु इस जाग्रति के युग में वे स्वतन्त्रता पूर्वक अपनी जीविका

उपार्जित करना सीखने लगी हैं। स्त्रियाँ धन कमायें, यह हमारे समाज में अब तक गर्हित कार्य समझा जाता रहा है। लेकिन इस प्रकार के भ्रमपूर्ण विचार शीघ्रता से लुप्त होते जा रहे हैं। शिक्षा ने ही स्त्रियों को जीविकोपार्जन करना सिखाया है। अब हम देखते हैं कि विदुषी महिलायें शिक्षा देती हैं और वेतन पाती हैं। अध्यापन कार्य के अतिरिक्त स्त्रियाँ डाक्टरी और वकालत का व्यवसाय भी करने लगी हैं। अनेक महिलाओं को काफी सफलता मिल चुकी है। स्त्रियाँ नर्स और स्वयंसेविका के रूप में भी काम करती हैं।"

संयुक्त प्रान्त के 1931 के आंकडों के अनुसार जीविकोपार्जन में सलग्न स्त्री-पुरुषों की सख्या इस प्रकार है[98]—

व्यवसाय	व्यवसाय में लगे पुरुष	व्यवसाय में लगी स्त्रियाँ	प्रति एक हजार पुरुषों पर कार्य करने वाली स्त्रियाँ
1. कृषि व पशुपालन	1,29,48,396	54,22,343	419
2. खनन क्षेत्र	4742	1895	400
3. उद्योग	17,68,321	9,01,845	510
4. परिवहन	1,96,738	5,193	26
5. व्यापार	7,92,002	3,45,689	436
6. पुलिस	61,934	128	2
7. लोक प्रशासन	80,453	721	9
8. वकालत	22,371	30	1
9. मेडिसिन	15,083	15,837	1050
10. अध्यापन	37,302	3,327	89
11. संगीत	21,864	8,660	396
12. धार्मिक	1,12,148	19,684	176
13. घरेलू कार्य	2,89,820	1,87,459	627
14. नर्स, कम्पाउन्डर आदि	2,439	15,065	6,177
15 वेश्यावृत्ति	116	4,186	36,086

आंकड़ो से स्पष्ट है कि महिलायें अब पुलिस, लोकप्रशासन, डाक्टरी, वकालत, अध्यापन जैसे प्रतिष्ठित व्यवसायों को अपनाने लगी थीं। मेडिसन के क्षेत्र में कार्यरत स्त्रियों की सख्या पुरुषो की सख्या से भी अधिक थी। यो विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं की सख्या बहुत कम थी, लेकिन सदियों की पराधीनता के पश्चात् बदली इस स्थिति ने स्त्रियों को आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए प्रेरित किया और शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ वे नई-नई ऊँचाइयो को छूने लगीं।

***

सन्दर्भ

1. चाँद, मई 1937, पृ 14-19
2. पट्टाभिसीतारम्मैया, कांग्रेस का इतिहास, अनु हरिभाऊ उपाध्याय, पृ 139
3. बिपिन चन्द्र, भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, पृ. 207
4. वही, पृ. 210
5. वही, पृ. 211
6. आज, 19, 21 मार्च, 1930
7. आज, 15 मार्च, 1930
8. आज, 21 मार्च, 1930
9. आज, 31 मार्च, 1930
10. द लीडर, 9 अप्रैल, 1930
11. सत्याग्रह समाचार, 17 अप्रैल, 1930
12. पट्टाभिसीतारमैया, कांग्रेस का इतिहास, पृ. 206
13. ताराचन्द, हिस्ट्री ऑफ दि फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया, भाग-2, पृ. 142

14. रिपोर्ट ऑन द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ द यूनाइटेड प्राविन्स ऑफ आगरा एण्ड अवध (1929-1930), पृ. 6

15. द लीडर, 19 अप्रैल, 1930

16. आज, 19 अप्रैल, 1930

17. आज, 19 अप्रैल, 1930, 4 मई, 1930

18. आज, 20 अप्रैल, 1930

19. चाँद, जुलाई 1930, पृ. 336

20. द लीडर, 19 मार्च, 1930

21. द लीडर, 7 जून, 1930

22. आज, 24 अप्रैल, 1930

23. द लीडर, 31 मार्च, 1930

24. द लीडर, 27 सितम्बर, 1930

25. द लीडर, 13 सितम्बर, 1930

26. चाँद, जून 1930, पृ. 231

27. द लीडर, 21 जून, 1930

28. द लीडर, 24 जुलाई, 1930

29. नेहरू, जवाहर लाल, ऑटोबायोग्राफी, पृ. 337

30. नेहरू, जवाहर लाल, डिस्कवरी ऑफ इण्डिया, पृ. 33

31. कन्हैया लाल मिश्र 'प्रभाकर', उत्तर प्रदेश . स्वाधीनता संग्राम की एक झाँकी, पृ. 62

32. एनुअल रजिस्टर, खण्ड-I, जनवरी से जून, 1932, पृ 24

33 द लीडर, 24 जुलाई, 1930

34. द लीडर, 29 मई, 1930

35. द लीडर, 30 मई, 1930

36. कन्हैया लाल मिश्र 'प्रभाकर', उत्तर प्रदेश . स्वाधीनता संग्राम की एक झाँकी, पृ. 67

37. सरकार, सुमीत, मॉडर्न इण्डिया, पृ. 326

38. ताराचन्द, हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया, भाग-II, पृ. 149

39. रामन राव, एम.वी, ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ द इण्डियन नेशनल कांग्रेस, पृ. 155-156

40. आज, 14 जनवरी, 1932

41. सरकार, सुमीत, मॉडर्न इण्डिया, पृ. 326

42. संयुक्त प्रान्त के पुलिस इंस्पेक्टर जनरल डाड की 3 दिसम्बर, 1930 की टिप्पणी, होम पोलिटिकल, 249/1930

43 चाँद, नवम्बर, 1930, पृ 4

44 आज, 4 फरवरी, 1931

45. कूपलैण्ड, आर, द इण्डियन प्राबलम : 1833-1935, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, 1943, पृ 134

46. रीव्स, पी.डी., ग्राहम बी.डी., गुडमैन, जे.एम., ए हैण्ड बुक टू इलेक्शन इन उत्तर प्रदेश (1920-1951), पृ. 44

47. द पाइनियर, 9 फरवरी, 1937

48. द लीडर, 8 फरवरी, 1937

49. रीव्स, पी.डी., ग्राहम बी.डी., गुडमैन, जे.एम., ए हैण्ड बुक टू इलेक्शन इन उत्तर प्रदेश (1920-1951), पृ. 306

50. द लीडर, 10 फरवरी, 1937

51. द इण्डियन एनुअल रजिस्टर, 1937, पार्ट-I (एल.)

52. द लीडर, 13, 19, 22 फरवरी, 1937, सरस्वती, नवम्बर, 1937, पृ. 462-465

65. रिपोर्ट ऑफ द प्राइमरी एण्ड सेकेन्डरी रिआर्गनाइजेशन कमेटी ऑफ यूनाइटेड प्राविन्स, पृ. 74

66 वही, पृ 74

67 वही, पृ 67

68 जनरल रिपोर्ट ऑन द पब्लिक इन्सट्रक्शन ऑफ यूनाइटेड प्राविन्स ऑफ आगरा एण्ड अवध, 1931-32, पृ. 14

69 वही, पृ. 25-26

70 वही, तालिका 1 व 3

71. कमला, नवम्बर, 1938, पृ. 161-162

72 वही, पृ. 163

72.1. सरस्वती, मई, 1933, पृ. 629

73. जैन, देवकी, इंडियन वुमन (सम्पादित), पृ 198

74. वही, पृ 198

75. जैनेन्द्र, परख, पृ. 75-76

76. वर्मा, वृन्दावन लाल, प्रेम की भेंट, पृ. 68-69

77. वर्मा, वृन्दावन लाल, सगम, पृ. 66-67

78. निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, अलका, पृ. 90

79. जैनेन्द्र कुमार, त्यागपत्र, पृ. 65

80. कौशिक, विशम्भर नाथ, माँ, पृ. 260

81. वर्मा, भगवती चरण, तीन वर्ष, पृ. 76

82. निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी, अप्सरा, पृ. 81

83 वर्मा, वृन्दावन लाल, कुण्डलीचक्र, पृ. 146

84. कौशिक, विशवम्भर नाथ शर्मा, भिखारिणी, पृ. 43

85. जैनेन्द्र कुमार, सुनीता, पृ. 148

86. वरदान, पृ. 59

87. प्रसाद, जयशंकर, तितली, पृ. 117

88. मजुमदार, राय चौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास, भाग-3, पृ. 322

89. सेन्सस ऑफ यूनाइटेड प्राविन्स ऑफ आगरा एण्ड अवध, 1931, पृ. 295

90. वही, पृ. 307

91. वही, पृ. 307

92. वही, पृ. 295

93 अस्थाना, प्रतिमा, विमेन्स मूवमेन्ट इन इण्डिया, पृ. 216-217

94. सरस्वती, अगस्त, 1938, पृ. 194

95. अस्थाना, प्रतिमा, विमेन्स मूवमेन्ट इन इण्डिया, पृ. 107

96. मेहता चेतन, महिला एवम् कानून, पृ 23

97. चाँद, मई, 1937, पृ. 15-19

98. सेन्सस ऑफ यूनाइटेड प्रॉविन्स ऑफ आगरा एण्ड अवध, 1931, पृ. 431-433

***

अध्याय –5

बदलता परिप्रेक्ष्य

(1940–1947)

1940 का दशक सम्पूर्ण भारतीय इतिहास में युगान्तरकारी परिवर्तन का काल था। इसी काल खण्ड में भारत एक लम्बे संघर्ष के पश्चात् विदेशी शासन से मुक्त हुआ था। उत्तर प्रदेश ही नहीं वरन् सम्पूर्ण भारत इस दशक मे आन्दोलित था। राजनीतिक घटनाक्रम अपने चरम पर था। राजनीतिक उथल-पुथल के इस दौर में महिलाओं ने भी सक्रिय भूमिका निभाई। सविनय अवज्ञा आन्दोलन में महिलाओं की भागीदारी ने पहले ही उत्तर प्रदेश के ग्रामीण अंचलों तक की महिलाओं में अदम्य उत्साह और स्फूर्ति भर दी थी। वे घरों की चहारदीवारी से निकलकर राजनीति और सत्ता के पुरुष प्रधान क्षेत्र में प्रवेश कर चुकी थीं।

महिलाओं की राजनीतिक जागरुकता को देखते हुए 12 फरवरी, 1940 को मृदुला साराभाई ने डा. राजेन्द्र प्रसाद को एक पत्र लिखा और कांग्रेस के अन्तर्गत एक 'महिला विभाग' स्थापित करने की मांग की।[1] उनके अनुसार "कुछ वर्षों से बड़ी भारी संख्या में स्त्रियों ने कांग्रेस की गतिविधियो में भाग लेना प्रारम्भ किया है और उनकी संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है, किन्तु सार्वजनिक जीवन में विशेष अनुभव न होने और संगठन की कमियों के कारण महिलाओं का अपनी गतिविधियों को जारी रखना कठिन हो रहा है। अतः कांग्रेस में, उसके अन्य विभागों की तरह, एक महिला विभाग आवश्यक हो गया है।" अरुणा आसफ अली, सुचेता कृपलानी, विजय लक्ष्मी पंडित आदि ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये। कांग्रेस ने इन सुझावों का समर्थन किया और 'महिला विभाग' का गठन किया। सुचेता कृपलानी इस विभाग की सचिव बनीं।[2] महिलाओं को अधिक से अधिक सख्या में जाग्रत करने के लिए प्रदेश के सभी जिलों, शहरों व कस्बों में 'महिला

आन्दोलन के दौरान पूरे देश में हुई करीब आधी गिरफ्तारियाँ इसी प्रदेश से हुई थीं।" महिला सत्याग्रही सत्याग्रह करने से पूर्व गाँधी जी के निर्देशानुसार जिला मजिस्ट्रेट को सूचना देती थीं कि वे कब और कहाँ सत्याग्रह करेंगी। यदि वे एक स्थान पर सत्याग्रह करते हुए गिरफ्तार नहीं की जातीं तो दूसरे स्थान पर सत्याग्रह करती थीं। धीरे-धीरे प्रत्येक जिले मे सत्याग्रह में भाग लेने वाली महिलाओं की संख्या बढती गयी।

लखनऊ जिले की सर्वप्रथम महिला सत्याग्रही श्रीमती शान्ती देवी थीं।[7] उन्होंने बख्शी का तालाब नामक स्थान पर युद्ध विरोधी नारे लगाकर सत्याग्रह किया। इसके लिए उन्हें 6 मास की कैद दी गयी।[8] श्रीमती राजवती नेहरू[9] और श्रीमती कान्ती देवी अवस्थी[10] को सत्याग्रह करने के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया। इन महिलाओं की गिरफ्तारी से महिलाओं के उत्साह में कोई कमी नहीं आयी और वे जगह-जगह युद्ध विरोधी नारे लगाकर सत्याग्रह करती रहीं। 20 फरवरी को तीन सौ महिलाओं और विद्यार्थियों का सम्मिलित जुलूस तिरंगा झण्डा लिये हुए किसान पुस्तकालय से निकला।[11] सत्याग्रह में भाग लेने के कारण अनेक महिलाओं को जुर्माने सहित कैद की सजा दी गई।

इलाहाबाद जिले की सक्रिय कार्यकर्ती श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी ने 2 दिसम्बर, 1940 को इलाहाबाद[12] में और श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने 5 दिसम्बर को कानपुर जिले में[13] सत्याग्रह करने की सूचना मजिस्ट्रेट को दी, परन्तु दोनों ही सत्याग्रह करने से पूर्व ही गिरफ्तार कर ली गईं। इलाहाबाद में पिछले आन्दोलनों की तुलना में इस आन्दोलन में कम संख्या में महिलायें आगे आयीं।

बनारस में सर्वप्रथम महिला सत्याग्रही डा. बोलर थंगम्पा थीं।[14] सत्याग्रह करने से पूर्व ही पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। 60 वर्षीय श्रीमती भगवती देवी, 65 वर्षीय श्रीमती गिरिबाला देवी[15] और 70 वर्षीय श्रीमती जगरानी देवी[16] ने मजिस्ट्रेट को सत्याग्रह करने की सूचना दी और गिरफ्तार कर ली गईं। जेल से छूटने के बाद इन्होंने फिर से सत्याग्रह किया।

आगरा जिले में श्रीमती विद्यावती राठौर, श्रीमती चन्द्रावती विभव, श्रीमती आनन्दी देवी, श्रीमती गोमती, वेदवती, शर्बती, सरस्वती देवी, सुखदेवी पालीवाल और सुभद्रा देवी को सत्याग्रह में भाग लेने के कारण जुर्माने और कैद की सजायें मिलीं।[17]

मेरठ जिले में प्रकाशवती सूद, श्रीमती उर्मिला शास्त्री और श्रीमती सरस्वती देवी सत्याग्रह करने के पूर्व गिरफ्तार कर ली गईं।[18] इसके अलावा सुश्री कुसमलता, गंगा देंवी और सत्यवती स्नातिका को सत्याग्रह करने के कारण कैद और ज़ुर्मानें की सज़ा मिली।[19]

फैजाबाद में सुचेता कृपलानी ने 6 दिसम्बर, 1940 को सत्याग्रह करने की सूचना मजिस्ट्रेट को दी, परन्तु सत्याग्रह करने से पूर्व ही वे गिरफ्तार कर ली गईं। उन्हें एक वर्ष कठोर कैद और दो सौ रुपये जुर्माने की सज़ा हुई।[20] फैजाबाद की अन्य सक्रिय कार्यकर्त्रियाँ श्रीमती आशा देवी,[21] रानी लक्ष्मी देवी,[22] श्रीमती कल्पा देवी और श्रीमती राम फली देवी[23] को जुर्माने और कैद की सज़ा मिली।

इसके अतिरिक्त प्रदेश के लगभग सभी जिलों कानपुर, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, नैनीताल, बरेली, बदायूँ, मथुरा, लखीमपुर

खीरी, गोण्डा, उन्नाव, रायबरेली, बस्ती, गोरखपुर, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, गाजीपुर, जौनपुर, फतेहपुर, फर्रुखाबाद, जालौन, बहराइच में अनेकों महिलाओं ने गिरफ्तारियाँ दीं व व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन में उत्साह के साथ भाग लिया। जहाँ एक ओर महिलायें युद्ध विरोधी नारे लगाकर सत्याग्रह कर रही थीं, वहीं दूसरी ओर खादी के प्रचार-प्रसार पर भी जोर दे रही थीं। 'गाँधी जयन्ती' के अवसर पर आगरा में श्रीमती सुखदेवी पालीवाल ने अन्य महिलाओं के साथ खादी के प्रचार का कार्य विशेष रूप से आरम्भ किया।[24] मिर्ज़ापुर जिले की 80 महिलाओं ने सूत कातकर गाँधी जी के पास भेजा।[25]

धीरे-धीरे आन्दोलन की गति मन्द होती गई। विश्वयुद्ध की तात्कालिक स्थिति को देखते हुए सरकार की ओर से सत्याग्रहियों को मुक्त कर दिया गया। दिसम्बर 1941 में भारत की सुरक्षा को ध्यान में रखकर कांग्रेस कार्यकारिणी ने अपनी बैठक में व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन को समाप्त करने का निर्णय लिया।

सन् 1940-41 के व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन में महिलाओं ने अपने जिलों में ही नहीं बल्कि दूसरे जिलों में जाकर भी सत्याग्रह किया। कुछ महिलाओं ने जेल से रिहा होने पर दोबारा सत्याग्रह किया। महिलायें अपने छोटे-छोटे बच्चों तक को लेकर जेल गयीं। व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लेकर महिलाओं ने विश्वयुद्ध के विरुद्ध मनोवैज्ञानिक वातावरण तैयार करने में सहयोग दिया। स्वतन्त्रता संघर्ष में भाग लेने की प्रेरणा व्यापक स्तर पर महिलाओं को मिलने लगी थी।

भारत छोड़ो आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका

1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन स्वतन्त्रता संग्राम का अन्तिम आन्दोलन था। उत्तर प्रदेश की महिलायें किसी भी राजनीतिक संघर्ष में अपनी भागीदारी दर्ज करने के लिए प्रेरित ही नहीं थी, अपितु कटिबद्ध भी थीं। स्वरूपरानी नेहरू, कमला नेहरू, सरोजिनी नायडू, विजयलक्ष्मी पंडित आदि ने सम्पूर्ण प्रदेश की महिलाओं में अद्भुत रोमांच ला दिया था।

द्वितीय विश्वयुद्ध और क्रिप्स मिशन की असफलता के कारण 8 अगस्त, 1942 को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस महासमिति ने 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित किया। इसमें कहा गया कि "भारत में ब्रिटिश शासन का तात्कालिक अन्त भारत के लिए और मित्र राष्ट्रों के आदर्श की पूर्ति के लिए आवश्यक है।"[26]

महात्मा गाँधी ने 'करो या मरो' का नारा देते हुए कहा—"हम स्वतन्त्र भारत चाहेंगे या उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करते हुए मर जायेंगे। प्रत्येक कांग्रेसी महिला तथा पुरुष इसी दृढ़ निश्चय के साथ आन्दोलन में भाग लें कि वे देश की गुलामी के लिए जीवित नहीं रहेंगे।[27] जैसे ही यह प्रस्ताव पारित हुआ उसी रात्रि को गाँधी जी तथा सभी राष्ट्रीय नेता बन्दी बना लिये गये; परन्तु गाँधी जी द्वारा दिया गया 'करो या मरो' का संदेश करोड़ों देश वासियों के लिए आदर्श वाक्य बन गया। सम्पूर्ण भारत ब्रिटिश दासता को समाप्त करने के लिए तत्पर हो उठा। कांग्रेसी नेताओं की गिरफ्तारी ने जन आक्रोश की एक अभूतपूर्व और देशव्यापी लहर उत्पन्न कर दी थी। नेतृत्व के अभाव में

अहिंसा का पालन करना जनता के लिए असम्भव हो गया था। सम्पूर्ण भारत में सरकार के कठोर दमन चक्र के कारण जनता के विरोध ने उग्र रूप धारण कर लिया और हिंसा का मार्ग पकडा।

उत्तर प्रदेश (संयुक्त प्रान्त) में भारत छोडो आन्दोलन चरम सीमा पर रहा। 9 अगस्त को ही संयुक्त प्रान्त मे कांग्रेस संगठनों को अवैध घोषित कर दिया गया।[28] समाचार पत्रों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।[29] कठोर दमन नीति के बावजूद महिलायें आगे आईं। लगभग सभी शहरों में जुलूस निकाले, सभायें की और ब्रिटिश दमन नीति का सामना किया। लखनऊ, कानपुर, वाराणसी, इलाहाबाद के शहरी क्षेत्रों में जितनी गंभीर स्थिति ब्रिटिश सरकार के सामने थी, उससे कहीं गंभीर स्थिति ग्रामीण अंचलों (विशेषतया पूर्वी उत्तर प्रदेश) में छाई हुई थी।

बनारस, इलाहाबाद और लखनऊ विश्वविद्यालय वास्तविक रूप से पूरी तरह बन्द हो गये।[30] लखनऊ जिले में 10 अगस्त को स्कूलों और कालेजों के अधिकतर छात्रों ने हडताल की और सरकारी आज्ञा तोड़कर जुलूस निकाला।[31] श्रीमती शिवराजवती नेहरू ने महिला कालेज में हड़ताल कराई और तिरंगा झण्डा फहराया। वे पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर ली गईं।[32] सुश्री स्वरूप रानी बक्शी, शान्ती देवी वैद्या, आशा लता, सुश्री सुरजीत कौर, लक्ष्मी देवी, रामदुलारी, आशा देवी, कान्ती देवी अवस्थी लखनऊ की सक्रिय कार्यकर्ता थीं, जिन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।[33] लखनऊ की कुछ महिलाओं ने युद्ध विरोधी पर्चे भी बाँटे। श्रीमती एस.एन. टैगोर और कुमारी पुरुषोत्तम पर्चे बाँटने के

अभियोग में गिरफ्तार कर ली गई।[34] विश्वविद्यालय के छात्र-छात्राओं ने जुलूस निकालना व प्रदर्शन करना जारी रखा।[35]

औद्योगिक शहर कानपुर में 9 अगस्त को नेताओं की गिरफ्तारियों के विरोध मे पूर्ण हड़ताल रही और प्रदर्शनों में विद्यार्थियों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया।[36] इस आन्दोलन में कानपुर की महिलायें भी आगे आई। यहाँ 51 छात्राओं ने जुलूस निकाला।[37] सुश्री जसकुंवर देवी, नारायणी देवी, पार्वती देवी वाजपेयी, फूलवती कुमारी, विलास देवी, सुन्दरी देवी, प्रभावती दीक्षित, श्रीमती तारा अग्रवाल को आन्दोलन के दौरान सक्रिय रहने के कारण जुर्माने सहित कैद की सजा मिली।[38]

अगस्त 1942 की एक रिपोर्ट के अनुसार "दो सबसे अधिक प्रभावित शहर इलाहाबाद व बनारस हैं। दोनों ही स्थानों पर टेलीफोन और टेलीग्राफ के तारों को भारी नुकसान पहुँचाया गया है।"[39] इलाहाबाद में एक बार फिर आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान करने के लिए नेहरू परिवार की महिलायें सामने आयीं। जुलूसों और सभाओं पर प्रतिबन्ध के बावजूद यहाँ जुलूस निकाले गये और सभायें की गईं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्रों ने प्रतिदिन एक जूलूस निकालने का निश्चय किया। श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने विश्वविद्यालय जाकर छात्रों से शांतिपूर्वक जुलूस निकालने का अनुरोध किया।[40] 11 अगस्त को छात्र-छात्राओं का विशाल जुलूस विश्वविद्यालय से निकला।[41] जुलूस की पहली पंक्ति में छात्रायें चल रही थीं। अगले दिन निकलने वाले जुलूस पर लाठी चार्ज और गोली चलने की संभावना की सूचना मिलने के बाद भी 12 अगस्त को बी.ए. प्रथम वर्ष की छात्रा कुमारी शकुन्तला शर्मा हाथ में तिरंगा लिए हुए विद्यार्थियों के जुलूस का नेतृत्व कर रही थी।

छात्र कचहरी भवन में झण्डा फहराने में सफल हुए। जिलाधिकारी डिक्सन ने लाठी चार्ज का आदेश दिया, जिसमें शकुन्तला शर्मा सहित कई छात्र घायल हुए। जुलूस के डटे रहने के कारण डिक्सन ने गोली चलाने का आदेश दिया। शकुन्तला को बचाने में एक छात्र लाल पद्मधर के सिर में गोली लगी और तत्काल ही उसकी मृत्यु हो गयी।[42] पुलिस की दमन नीति के बावजूद विद्यार्थियों के उत्साह में कमी नहीं आई।

12 अगस्त की रात को श्रीमती पंडित अपनी सक्रिय गतिविधियों के कारण गिरफ्तार कर ली गईं।[43] 24 अगस्त को पूर्णिमा बनर्जी[44] और 30 अगस्त को श्रीमती पंडित की पुत्री चन्द्रलेखा भी गिरफ्तार करके नैनी जेल ले जाई गईं।[45] 11 सितम्बर को इंदिरा गाँधी पाँच अन्य महिलाओं रामकली देवी, महादेवी चौबे, लक्ष्मीबाई बापट, विद्यावती और बारह वर्षीया गोविन्दी देवी के साथ गिरफ्तार करके नैनी जेल भेजी गईं।[46] सोराँव की जानकी देवी, कृष्णा कुमारी, कलावती, श्रीमती विष्णुकान्त, ऊषा, कान्ती सरन, चम्पा देवी, राजकुमारी गिरफ्तार की जाने वाली अन्य महत्वपूर्ण महिलायें थीं।[47]

प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या महादेवी वर्मा ने अप्रत्यक्ष रूप से आन्दोलनकारियों का साथ दिया। उन्होंने पर्चे बाँटने के लिए स्कूली छात्राओं का प्रयोग किया, जिससे पर्चे इलाहाबाद के कोने-कोने तक पहुँच गये।[48]

उत्तर प्रदेश के अन्य जिलों में भी आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर था। मेरठ में श्रीमती कमला चौधरी, श्रीमती प्रकाशवती सूद, श्रीमती विद्यावती कंसल, प्रभात कुमारी, मन्जब कुमारी, शान्ती कुमारी, श्रीमती उर्मिला शास्त्री, श्रीमती चन्द्रा मित्तल, रघुनाथ कुमारी जेल जाने

वाली प्रमुख महिलाये थीं।[49] आगरा जिले की श्रीमती पार्वती देवी, श्रीमती विद्यावती राठौर एव सुख देवी पालीवाल आन्दोलन के प्रथम दौर में गिरफ्तार कर ली गईं। श्रीमती पार्वती देवी ढाई वर्ष बाद और श्रीमती विद्यावती राठौर डेढ वर्ष बाद रिहा की गईं।[50]

कुछ स्त्रियों ने आतंकवादी गतिविधियों में भी भाग लिया। संचार साधन, पुलिस एव सेना के केन्द्र इन कार्यवाहियों के शिकार हुए। ये कार्यवाहियाँ कभी-कभी छापामार युद्ध का रूप धारण कर लेती थीं। इन कार्यवाहियों में किसान, युवक तथा स्त्रियाँ परोक्ष-अपरोक्ष रूप से सम्बद्ध थीं।[51] नैनीताल जिले की विद्यावती सेवक उन महिलाओं में थीं, जिन्होंने तोड़-फोड़ सम्बन्धी कार्यक्रमों में भाग लिया। उन्हें भारतीय दण्ड संहिता और भारत रक्षा कानून की अनेक धाराओं के अन्तर्गत लगभग 15 वर्ष कड़ी कैद की सजा दी गयी, परन्तु बाद में 1946 में रिहा कर दी गयीं।[52] बलिया, आजमगढ़, गाजीपुर, जौनपुर में जनता ने छापामार युद्ध शुरू किया, जिसमें महिलाओं ने आन्दोलनकारियों को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग दिया। बलिया दस दिन तक अंग्रेजी सत्ता से मुक्त रहा।[53]

1943 के अन्त तक सम्पूर्ण भारत में गिरफ्तार महिलाओं में सर्वाधिक संख्या उत्तर प्रदेश की महिलाओं की थी। यहाँ 2942 महिलायें गिरफ्तार हुईं।[54] श्रीमती सरोजिनी नायडू, विजयलक्ष्मी पंडित और प्रायः सभी प्रमुख नेत्रियाँ पहले ही दौर में मैदान में आ गई थीं। पर इस समय कुछ नई साहसी नारियाँ भी मैदान में आईं, जिन्होंने भूमिगत रहकर आन्दोलन का नेतृत्व संभाले रखा। अरुणा आसफ अली, ऊषा मेहता और सुचेता कृपलानी के नाम इनमें मुख्य हैं।[55] आजादी

की इस आखिरी लड़ाई में हजारों महिलाओ ने हिस्सा लिया और जेल यातनाओं के साथ पारिवारिक कष्ट भी सहे। इस समय के दमन चक्र में कई महिलाओं को नारीत्व पर आँच के कुछ अनपेक्षित कष्ट भी सहन करने पड़े। महिलाओं की इस रूप में शहादत भी याद रखी जानी चाहिए।[56]

26 जनवरी, 1944 को स्वतन्त्रता दिवस मनाने के आयोजनों में उत्तर प्रदेश की महिलाओं की अग्रणी भूमिका रही। श्रीमती सरोजिनी नायडू जो जेल से रिहा हो चुकी थीं, इन आयोजनों की मुख्यकार्यकर्त्री थीं।[57] इससे महिलाओं में अपूर्व उत्साह छाया हुआ था।

राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तिम चरण 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में महिलाओं की संख्या पिछले आन्दोलनों की अपेक्षा कम रही क्योंकि आन्दोलन का रूप बदल जाने के कारण महिलायें वाह्य क्षेत्र में खुल कर कार्य नहीं कर पायी थीं। लेकिन उनमें उत्साह की कमी नहीं थी। उन्होंने अपनी शक्ति, संकल्प व दृढ़ता का परिचय सरकारी दमन के बावजूद दिया।

भारत छोड़ो आन्दोलन के बाद की स्थिति

21 अगस्त, 1945 को वायसराय और इग्लैण्ड स्थित भारत मंत्री ने इंग्लैण्ड में घोषणा की कि भारत में आगामी शरद् ऋतु में चुनाव होंगे। 23 सितम्बर, 1945 को बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने आगामी चुनाव में भाग लेने का निश्चय किया।[58] संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने भी 6 अक्टूबर, 1945 को लखनऊ बैठक में चुनाव में भाग लेने का निश्चय किया।[59]

संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की ओर से महिलाओं में चुनाव के लिए जाग्रति उत्पन्न करने पर विशेष जोर दिया गया। 1946 में निश्चित समय पर चुनाव सम्पन्न हुए। इस चुनाव में श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी, श्रीमती विद्यावती राठौर, श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित, श्रीमती प्रकाशवती सूद, श्रीमती सज्जन देवी मन्होत, श्रीमती लक्ष्मी देवी कांग्रेस प्रत्याशी के रूप में, बेगम अमजादी बानो मुस्लिम लीग की प्रत्याशी के रूप में और बेगम अब्दुल वाजिद नेशनलिस्ट मुस्लिम पार्टी के प्रत्याशी के रूप में विजयी हुईं।[60] 1 अप्रैल को उत्तर प्रदेश में गोविन्द बल्लभ पन्त के नेतृत्व में कांग्रेसी मंत्रिमण्डल गठित हुआ।[61]

इसी बीच कैबिनेट मिशन की योजना के अनुसार संविधान सभा के लिए चुनाव हुए। संविधान सभा के लिए विभिन्न प्रान्तों से 15 महिलायें निर्वाचित हुईं जिनमें उत्तर प्रदेश से श्रीमती सुचेता कृपलानी, श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित, श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी, श्रीमती कमला चौधरी एवं बेगम एज़ाज रसूल भी थीं।[62]

ब्रिटिश सरकार और भारतीयों के बीच सत्ता हस्तान्तरण के प्रयास होते रहे। अन्त में माउंटबेटन योजना के आधार पर जुलाई, 1947 में ब्रिटिश संसद ने 'भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम' पारित किया जिसके परिणामस्वरूप 15 अगस्त, 1947 को भारत एक लम्बी दासता के पश्चात् स्वतन्त्र हुआ।

सामाजिक, सांस्कृतिक आन्दोलनों में महिलाओं की भागीदारी

1940 के दशक तक आल इण्डिया विमेन्स कान्फ्रेंस, महिला राजनीतिक नेताओं और सामाजिक नेताओं का मिलन-स्थल बन गया था। पूरे भारत में इस संगठन की शाखायें स्थापित हो चुकी थीं। उत्तर प्रदेश में लखनऊ, कानपुर, इलाहाबाद, देहरादून, वाराणसी, आगरा, मेरठ, बरेली, अलीगढ़ की शाखायें अत्यधिक प्रभावी थीं।[63] यद्यपि यह संगठन ग्रामीण व नगरीय निर्धन वर्ग की महिलाओं को साथ ले चलने में असफल रहा और इसका समस्त उद्देश्य और प्रयास निःस्सन्देह मध्यम वर्ग की आकाक्षांओं से सम्बद्ध था, फिर भी यह महिला-संगठन महिला आन्दोलन में पुरुषों की जगह महिलाओ के नेतृत्व की स्थापना में और इस तथ्य को स्थापित करने में कि महिलाओं के पुनरुत्थान की जिम्मेदारी स्वयं महिलाओं पर है, में सफल रहा।[64] इस महिला संगठन ने इस काल () में महिलाओं में संगठन की प्रेरक शक्ति उत्पन्न की थी। मार्च, 1940 में 'सरस्वती पत्रिका' में छपे एक लेख के अनुसार-"हमारे देश की महिलायें किस तेजी के साथ उन्नति की ओर अग्रसर हो रही हैं, इसका एक सजीव परिचय अखिल भारतीय महिला सम्मेलन ने अपने गत प्रयाग अधिवेशन में दिया है। इस बार देश के कोने-कोने से आई हुई महिला प्रतिनिधियों के रंग-ढंगों, वक्तृताओं और प्रस्तावों से ज्ञात होता है कि शताब्दियों से रूढ़ियों की चहारदीवारी में कैद रहने वाली भारतीय महिलाओं ने अब उस जीर्ण बन्धन को तोड़ डाला है और वे आजादी के वातावरण में साँस लेने का उपक्रम कर रही हैं। साथ ही यह भी कि वे अपना कार्य क्षेत्र अब चक्की-चूल्हे और

बच्चों के लालन-पालन में ही परिमित नहीं मानतीं। वे अपने को सारे ससार के साथ मिलाकर देखना और संसार1940-1947 की समस्त गतिविधियों पर अपने दृष्टिकोण से विचार करना चाहती हैं।"[65]

1940 में वीमेन्स कान्फ्रेंस के 15वें अधिवेशन की अध्यक्षता रामेश्वरी नेहरू ने की, जिसमें सीलोन से आये प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया।[66] श्रीमती रामेश्वरी नेहरू ने वार्षिकोत्सव में अध्यक्ष पद से दिये गये अपने भाषण में संस्था के कार्यों का उल्लेख करते हुए कहा—"सामाजिक क्षेत्रों में हम लोगों ने कुप्रथाएँ और अन्यायपूर्ण कानून दूर करने में सहायता की है। जिन अनेक सामाजिक सुधारों के लिए हमने जोर दिया है, वे पर्दा और बाल-विवाह दूर करने, विधवा विवाह का प्रचार करने, दहेज प्रथा रोकने तथा स्त्रियों की आर्थिक स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में थे। हमारी कार्य प्रणाली सभाओ और सम्मेलनों द्वारा स्त्रियों में प्रचार करने की है। हम लोगों ने व्यक्तिगत कानूनों में, खास कर हिन्दुओं के कानूनों में भारी परिवर्तन करने का प्रचार किया है और इस बात पर जोर दिया है कि सम्पत्ति पर पैतृक अधिकार, विवाह, बच्चों की अभिभावंकता तथा अन्य मामलों में स्त्रियों को बराबर के अधिकार मिलने चाहिए। स्त्रियों की बिक्री रोकने, बच्चों की रक्षा करने, देवदासी प्रथा बन्द करने और अन्य अनेक कार्यों के लिए हम लोगों ने माँग पेश की है। हमने मिलों तथा कारखानों में काम करने वाली स्त्रियों के संगठन का भी काम किया है और उनके अच्छे मकानों की व्यवस्था, बच्चे पैदा होने पर छुट्टी, नर्स की शिक्षा के स्कूल आदि की माँग हमने अपनी माँग में शामिल कर ली है।"[67] कान्फ्रेंस के प्रयासों के कारण सरकार ने हिन्दू लॉ में स्त्रियों पर किये जा रहे अत्याचारों की जाँच के लिए समिति का गठन किया। इस

कान्फ्रेंस के पत्र 'रोशनी' ने महिलाओं की जागृति के लिए किये जा रहे प्रयासों को आगे बढाया।[68] 1944 तक कान्फ्रेंस की 180 शाखायें और सदस्यता 25,003 तक बढ गयी।[69]

वीमेन्स कान्फ्रेस की सदस्याओं ने अनेक अन्तरराष्ट्रीय सभाओं में भारत का प्रतिनिधित्व भी किया। 1946 में हंसा मेहता के नेतृत्व में एक प्रतिनिधिमण्डल संयुक्त राष्ट्र गया। बेगम हामिद अली ने 'स्टेटस ऑफ विमेन कमीशन' का प्रतिनिधित्व किया। संयुक्त राष्ट्र संघ की सामान्य सभा में विजयलक्ष्मी पंडित ने भारतीय दल का नेतृत्व किया। राजकुमारी अमृत कौर 'यूनेस्को' की उपाध्यक्ष चुनी गईं।[70]

वीमेन्स कान्फ्रेंस के 20वें मद्रास अधिवेशन (1947) में सदस्यता और बढ़ी। अब 'रोशनी' को उर्दू, हिन्दी व अंग्रेजी; तीन भाषाओं में प्रकाशित किया जाना प्रारम्भ किया गया। अवाबाई वाडिया ने 'सम कैरियर्स फार विमेन' नामक पुस्तक प्रकाशित किया। पुपुल जयकर ने 'इन्डस्ट्रियल को-ऑपरेशन', मिठ्ठन लाल ने 'ऑल इण्डिया सिविल कोड' प्रकाशित की। ये 'सभी नारी के मानसिक व बौद्धिक विकास की अभिव्यक्ति थे। कान्फ्रेंस ने 12 सदस्यों को एक एशियाई कान्फ्रेंस में भाग लेने के लिए भेजा।[71]

हंसा मेहता के प्रेरणादायक नेतृत्व के कारण 'संयुक्त राष्ट्र आर्थिक और सामाजिक काउन्सिल' ने वीमेन्स कान्फ्रेंस को विश्व के सलाहकारी दर्जा प्राप्त गैर सरकारी संगठनों की सूची मे शामिल किया।[72] 1947 के बाद भी यह संगठन नारी कल्याण के कार्यों में लगा रहा। इस संगठन ने महिलाओं को अपने उद्देश्य के लिए आवाज बुलन्द करने का आत्मविश्वास प्रदान किया।

सामाजिक, सांस्कृतिक आन्दोलनों में महिलाओं की भागीदारी ने तथा इन संगठनों ने, औसत गृहिणियों को घर की चहारदीवारी से बाहर आने का अवसर व औचित्य प्रदान किया। यद्यपि अभी तक इसका कार्यक्षेत्र उच्च वर्ग की महिलाओं तक सीमित था, तो भी स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए इसने अत्यधिक प्रचार कार्य किया। परिणामस्वरूप महिलाओं में ऐसे अभिजात्य वर्ग का उदय हुआ जो महिलाओं के प्रश्नों को निरूपित करने और समाधान निकालने के प्रयास करने लगा।

शैक्षिक प्रगति

1940 के दशक तक स्त्री-शिक्षा के पक्ष में जनमत सहयोग करने लगा था। फरवरी 1940 में 'विशाल भारत' में छपे एक लेख के अनुसार "आज लोकमत स्त्री शिक्षा के पक्ष में है और सरकार, समाज के कर्णधारों तथा स्वयं स्त्रियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है। शिक्षा-विशेषज्ञों की ओर से आज स्त्री शिक्षा को निश्चित नीति और प्रणाली देने का प्रयत्न किया जा रहा है। स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का उतना ही अधिकार है, जितना पुरुषों का।"[73] स्त्रियों के लिए प्रारम्भ की गई संस्थाओं में वृद्धि हुई[74]—

वर्ष	संस्थाओं की संख्या
1921-22	23,517
1926-27	27,756
1931-32	33,969
1936-37	33,989
1939-40	34,564
1946-47	28,196

आंकड़ों से स्पष्ट है कि 1921-22 से 1939-40 के बीच लड़कियों के लिए स्थापित संस्थाओं में वृद्धि हुई। लेकिन इसके बाद इसकी संख्या में कमी आई, जैसा कि 1946-47 के आंकड़ों से स्पष्ट है। लेकिन संख्या में आई कमी से यह नहीं समझना चाहिए कि स्त्री शिक्षा में कमी आई, परन्तु इस काल में कई अपर्याप्त संस्थायें (मुख्यतया प्राथमिक स्कूल) बन्द हो गये और अधिक लड़कियाँ सहशिक्षा वाली संस्थाओं में पढ़ने लगी थीं।[75] इस अवधि में सभी संस्थाओं में लड़कियों के प्रवेश की संख्या में तीव्र वृद्धि हुई, जैसा कि आंकडों से स्पष्ट है[76]—

वर्ष	लड़के	लड़कियाँ
1922	69,62,928	14,24,422
1927	93,15,144	18,42,352
1932	1,02,73,888	24,92,649
1937	1,10,07,683	31,38,357
1942	1,22,66,311	37,86,876
1947	1,39,48,979	42,97,785

स्पष्ट है कि जहाँ 1922 में 14 लाख लड़कियों ने शैक्षिक संस्थाओं में प्रवेश लिया, वहीं 1947 में 43 लाख ने। सहशिक्षा संस्थाओं में लड़कियों का प्रवेश 35 प्रतिशत (1921–22) से बढ़कर 1946–47 में 54.6 प्रतिशत हो गया।[77]

प्रान्तीय स्तर पर स्त्री शिक्षा की अभिवृद्धि में भिन्नता थी। मद्रास, बम्बई, बंगाल में लड़कियों की संख्या में तीव्र वृद्धि हुई, जबकि संयुक्त प्रान्त, पंजाब, बिहार, उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रान्त में हुई वृद्धि अपेक्षाकृत कम थी।

उत्तर प्रदेश देश में न्यूनतम साक्षरता धारण करने वाले प्रान्तों की श्रेणी में आता है। निम्न तालिका में उत्तर प्रदेश में साक्षरता दर का क्रमिक विकास निरूपित किया गया है[78]–

उत्तर प्रदेश में साक्षरता दर का विकास–

जनगणना वर्ष	साक्षरता दर		
	कुल	पुरुष	स्त्री
1901	3.55	6.59	0.23
1911	3.88	6.87	0.56
1921	4.20	7.34	0.69
1931	5.49	9.37	1.10
1941	9.71	15.82	2.86
1951	12.44	19.74	4.17

आंकड़ों से स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश में शिक्षा की स्थिति अत्यन्त विषम थी। पुरुषों की साक्षरता दर अपेक्षाकृत अधिक थी। सदी के प्रारम्भ में लगभग 7 प्रतिशत पुरुष साक्षर थे जबकि साक्षर स्त्रियों का प्रतिशत नगण्य (0.23) रहा। 1941 में पुरुषों का प्रतिशत बढ़कर 15.82 प्रतिशत हो गया वहीं स्त्रियों की साक्षरता मात्र 2.86 प्रतिशत ही रही। वास्तव में प्रारम्भिक चार दशकों में मुख्य रूप से साक्षरता का अर्थ सिर्फ पुरुषों की साक्षरता से था। स्त्री साक्षरता का पुनरावलोकन करने पर स्त्री शिक्षा के प्रति गहरी उदासीनता का ही बोध होता है।

'विशाल भारत' के एक लेख में स्त्री शिक्षा की खराब स्थिति के कारणों का वर्णन करते हुए लिखा गया—"आज हम शिक्षा का जो अभाव देख रहे हैं, उसका कारण है हमारी राजनीतिक और आर्थिक गुलामी तथा सदियों की हिन्दू-मुस्लिम परम्परा द्वारा पैदा हुई सामाजिक बुराइयाँ जैसे—बाल-विवाह, पर्दा, धर्म, जाति और समाज का नियन्त्रण तथा माता-पिता द्वारा लड़कियों की शिक्षा का विरोध।"[79]

स्थापित परम्पराओं व सामाजिक-आर्थिक कारणों से 2-3 कक्षा के बाद लड़कियाँ बहुत कम पढ़ाई कर पाती थीं। 1926-27 में उत्तर प्रदेश में कक्षा एक में प्रवेश लेने वाली 100 लड़कियों में से मात्र 8 लड़कियाँ ही कक्षा चार तक पहुँच पाती थीं।[80] यही स्थिति थोडे बहुत अन्तर से हर प्रान्त में थी। परन्तु 1946-47 में शिक्षा के प्रसार के साथ स्थिति में परिवर्तन आया और उत्तर प्रदेश में कक्षा एक में प्रवेश लेने वाली 100 लड़कियों में से 20 कक्षा चार तक पहुँचने लगीं। मद्रास, बम्बई, पंजाब में स्थिति अधिक बेहतर थी। वहाँ क्रमशः 36 प्रतिशत, 34 प्रतिशत व 31 प्रतिशत लड़कियाँ कक्षा 4 तक पहुँच जाती थीं।

स्त्री शिक्षा की खराब स्थिति का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण था सरकार की उदासीनता और आर्थिक असमर्थता। प्रान्त में अधिकतर कन्या पाठशालायें व्यक्तिगत रूप से लोगों द्वारा स्थापित थीं। 1942 तक प्रान्त में लड़कियों का एक भी इण्टरमीडिएट कॉलेज नहीं था। 1947 तक देश में व प्रान्त में कन्याओं की शिक्षा के लिए सुगठित योजना का अभाव था। 1940 से 1945 तक द्वितीय विश्वयुद्ध जोरों पर रहा। अतः सरकार का ध्यान युद्ध पर ही केन्द्रित रहा। द्वितीय

विश्वयुद्ध के पश्चात् 'केन्द्रीय सलाहकार समिति' द्वारा शिक्षा को नया रूप देने के लिए सर जॉन सार्जेण्ट की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गयी। इस समिति ने स्त्री शिक्षा की आवश्यकता को पुरुषों की शिक्षा से कम नहीं माना व दोनों की प्रगति के लिए समान सुझाव प्रस्तुत किये। 1946 की सरकार में कांग्रेस, मुस्लिम लीग व ब्रिटिश सरकार तीनों में परस्पर मतभेद था। अतः शिक्षा का विस्तार और सुधार नहीं हो सका। 1946-47 का समय ब्रिटिश सत्ता के अंत की तैयारी और विभाजन में व्यतीत हो गया। इस प्रकार 1940 के दशक का पूरा समय राजनीतिक अस्त-व्यस्तता का केन्द्र रहा। शिक्षा का विकास 1947 तक नगरीय स्तर तक ही सीमित था।

ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं की शिक्षा के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया था। कुछ उच्च परिवारों की लड़कियाँ ही शहरों या कस्बों में अपनी शिक्षा प्राप्त कर पाती थीं। 1941 में उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा का प्रतिशत 2.86 था। स्त्री साक्षरता का यह प्रतिशत कुल जनसंख्या की दृष्टि से नगण्य होते हुए भी अत्यधिक महत्वपूर्ण था। स्त्री शिक्षा के धीरे-धीरे बढ़ते इस कदम ने स्त्रियों के लिए अनेक दिशाओं को खोला। महिलायें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने लगीं। निम्न वर्ग की ग्रामीण स्त्रियाँ तो पहले ही कृषि तथा कुटीर उद्योगों में सहयोग देती थीं, किन्तु परिवर्तित वातावरण में मध्यम व उच्च वर्ग की स्त्रियाँ भी नौकरी कर परिवार को आर्थिक सुदृढ़ता देने लगीं। शिक्षा तथा सरकारी नौकरी प्रतिष्ठा सूचक समझी जाने लगी। 'सरस्वती' में छपे लेख के अनुसार[81]—"उत्तर प्रदेश में महिलाओं ने प्रधानतया केवल दो पेशों में ही प्रवेश किया—अध्यापन व चिकित्सा। पुलिस विभाग में भी यद्यपि महिलाओं के प्रवेश में कोई रुकावट नहीं थी, तो भी इस

विभाग में महिलायें कम संख्या में ही नियुक्त हुईं। कुछ महिलाओं ने वकालत के पेशे में भी प्रवेश किया है। व्यवसाय के क्षेत्र में जिन महिलाओं ने प्रवेश लिया है उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया है कि महिलायें इस दिशा में भी बहुत सफल हो सकती हैं। बैंकों व कम्पनियों में महिलाओं को बहुधा प्रवेश मिला है।"

एक ओर जहाँ महिलायें उन्नति की नई सीढ़ियाँ चढ रही थीं, वहीं एक दूसरा रूढ़िवादी वर्ग भी था, जो उच्च शिक्षिता नारी से भयभीत था। अक्टूबर 1946 में 'चाँद' में छपे श्री कृपाल सिंह रावत के लेख के अनुसार—"मैं नारियों की उच्च शिक्षा का पक्षपाती बिल्कुल भी नहीं हूँ, क्योंकि उच्च शिक्षा से गृह जीवन सुखमय बहुत कम देखा गया है। नारी स्वभावतः गौरवमयी है, यदि वह उच्च शिक्षा प्राप्त कर ले तो उसे गृहस्थ जीवन के बन्धन में बंध कर दूसरे का आश्रित रहना पसंद नहीं होगा। परन्तु उन्हें इतनी शिक्षा दी जाये कि वे मातृभाषा द्वारा अपने विचार व्यक्त कर सकें, रामायण और महाभारत की शिक्षा गृहण कर सकें, गृहविज्ञान की उन्हें पूर्ण जानकारी हो।"[82]

1947 तक लोकमत स्त्री शिक्षा के पक्ष में हो गया था और सरकार, समाज के कर्णधारों तथा स्वयं स्त्रियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हो चुका था।

महिलायें और समाज

बीसवीं शताब्दी के तीसरे, चौथे दशक तक सामाजिक संगठन का आधार बदलने लगा था। प्राचीन सामाजिक संस्थाओं की उपयोगिता कम होती जा रही थी। संयुक्त परिवारों का विघटन प्रारम्भ

हो गया था। कुछ आर्थिक कारणों से, कुछ विचार स्वातन्त्रय व पश्चिम के विचारों के कारण, धीरे-धीरे संयुक्त परिवार तथा उसके साथ-साथ विवाह संस्था भी कमजोर पड़ने लगी थी। यह स्थिति विशेष कर मध्यम वर्ग के पढ़े-लिखे लोगों की थी। पढ़-लिख कर वह किसी बड़े शहर में जाकर काम करते थे और इस प्रकार संयुक्त परिवार से अलग रहना पड़ता था।[83] इस विघटन का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव नारी जीवन पर पड़ा, विशेषतः मध्यमवर्गीय नारी पर। संयुक्त परिवार में साधन हीन नारी जीवन निर्वाह कर लेती थी, लेकिन उसके टूटने से नारी शिक्षा आवश्यक समझी जाने लगी। संयुक्त परिवार परम्परागत रूढ़ियों को अधिक महत्व देता रहा है अतः इसके विघटन से उदारवादी तथा नवीन विचारों को अपनाने के लिए भूमि तैयार होने लगी। विधवा विवाह को प्रश्रय मिलने लगा। पर्दा प्रथा में भी कमी आने लगी। चाँद पत्रिका में छपे एक लेख 'पर्दे के खिलाफ जेहाद'[84] में पर्दे के विरुद्ध जागृति को प्रदर्शित करते हुए लिखा है—"ऐसा जान पड़ता है कि महिला समाज में पर्दे के दिन अब इने-गिने रह गये हैं। उस पर चारों तरफ से जैसे प्रहार हो रहे हैं और स्वयं महिलायें उस पर जिस जोर-शोर से आक्रमण कर रही हैं, उसे देखते हुए हमें आशा है कि अब यह कुप्रथा अधिक दिन साँस नहीं ले सकेगी। अब तो यह प्रबल धारा नगरों और कस्बों में पहुँच गई है और वहाँ भी इस सम्बन्ध में महिलायें प्रशंसनीय उत्साह और साहस से काम ले रही हैं।"

समाज में स्त्रियों की स्थिति के बदले हुए परिदृश्य का चित्रण अक्टूबर 1940 के 'चाँद' के एक लेख में इस प्रकार किया गया है—"पिछले 25 वर्षों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं और हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि आगामी 25 वर्षों में और भी क्रांतिकारी

परिवर्तन होते रहेंगे। आज से 25 वर्ष पहले किसी भी भद्र महिला की एक अंगुली का पोर भी किसी बाहरी पुरुष द्वारा देखा जाना एक बड़ी भारी [illegible] और असभ्यता समझी जाती थी। आज भी उस प्राचीन सदी की ऐसी स्त्रियाँ हमको देखने को मिलेंगी जिन्होंने अपने जीवन में न कभी घर से बाहर पैर रक्खा, न जिनका शरीर और मुख किसी पुरुष ने देखा। इन पच्चीस वर्षों के अन्दर उनकी पुत्री और पोतियाँ जो आज हमारे समाज में हैं, उनमें कितनी ही ग्रेजुएट, कितनी ही बैरिस्टर, कितनी डॉक्टर और कितनी ही बहुत सुन्दर वक्ता, कवि और लेखक हैं।"[85]

चाँद का एक अन्य लेख 'स्त्री का कर्तव्य' स्त्रियों के प्रति समाज में बदल रहे दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करता है—"हमारी समझ में पुरुष और स्त्रियों के मतभेद का बहुत कुछ आधार स्त्रियों पर पुरुषों के आधिपत्य से है। कार्यविभाजन बुरी बात नहीं है और मनुष्यों की जननी होने के कारण अधिकांश स्त्रियों का गृहस्थी संचालन का भार लेना सामाजिक हित की दृष्टि से उचित भी है। पर जब कोई काम विवशता का रूप धारण कर लेता है तो वह बुरा जान पड़ता है और उसका परिणाम भी सुखदायक नहीं होता। इसलिए यदि स्त्रियों को अनुचित और कठोर [illegible] बन्धनों से छुटकारा मिल जाये और वे अपने कर्तव्य का निर्धारण स्वयं कर सकें, तो उनकी बहुत सी शिकायतें दूर हो सकती हैं और वे स्वेच्छापूर्वक सामाजिक हित की दृष्टि से सभी आवश्यक कामों को अधिक अच्छी तरह सम्पन्न कर सकती हैं।"[86]

समाज चेतन नारी के अधिकारों के प्रति सजग हो गया था। जून, 1940 में 'कमला' पत्रिका में छपे एक लेख 'नारी जीवन

की प्रकृत समस्या' में नारी के आधारभूत अधिकारों व उन अधिकारों के प्रति पुरुषों की स्वाभाविक प्रतिक्रिया का विवेचन किया गया है—"हम अपने चारों तरफ वर्तमान जगत् में नारी विषयक कुछ समस्याओं को स्थूल भाव से देखते हैं। नारी चाहती है ज्ञान का प्रसार, गतिविधि का प्रसार, विवाह की आजादी, विवाह विच्छिन्न करने की स्वाधीनता, कर्म की स्वतन्त्रता और पुरुष के समान आर्थिक अधिकार। एक शब्द में, वह अपनी जीवन यात्रा के चारों तरफ की सब तरह की बाधा और दीनता को मिटा देना चाहती है। जरा सोचने पर मालूम होता है कि ये सब समस्यायें नहीं हैं, बल्कि अधिकार हैं और इन अधिकारों की माँग पेश करना हर एक मानव के लिए स्वाभाविक है। सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव से भी अधिकांश पुरुषों का मन आज भी इतना उदार और रूढ़िमुक्त नहीं हुआ है कि वे उनकी माँगों को स्वीकृत करें। अत: नारी में मनुष्यत्व का विकास जिस तरह आश्चर्यपूर्ण मालूम हुआ उसी तरह उसकी मनुष्योचित माँगें भी समस्यामूलक मालूम हुईं। यह नूतन पर पुरातन की स्वाभाविक प्रतिक्रिया है।"[87]

बदली परिस्थिति में शिक्षित नारी के आर्थिक स्वावलम्बन तथा घर-बाहर की समस्या ने नितान्त भिन्न रूप धारण किया। यह परिवर्तन औपन्यासिक साहित्य में भी दिग्दर्शित होता है। 'दादा कामरेड' की शैलबाला ने महिलाओं के पति चुनने, अपनी इच्छानुसार मातृत्व की अवस्था में प्रवेश करने तथा तलाक माँगने के अधिकार की प्रतिध्वनि की।[88] असंगत विवाहों को समाप्त करने के लिए तलाक की माँग प्रारम्भ हो गयी थी। पत्र पत्रिकाओं में भी इस माँग को समर्थन मिलने लगा। 'चाँद' पत्रिका के एक लेख के अनुसार—"नारीत्व का वह अंश जो मध्य युग की रूढ़ियों को तोड़ कर जाग चुका है, अगर तलाक जैसे

अधिकार की माँग करता है तो यह सर्वथा न्याय है, नितान्त वैध और पूर्णतः उचित है। वास्तविकता यह है कि तलाक की माँग मध्यम वर्ग विशेष की नारी की माँग है। सच बात तो यह है कि उसी वर्ग की नारी को तलाक की आवश्यकता भी है क्योंकि निम्न श्रेणी की स्त्रियाँ, कानून के दिये बिना ही, तलाक के अधिकार का उपभोग अपनी आदिम सामाजिक और जातिगत प्रथाओं के आधार पर कर रही हैं।"[89]

'निमन्त्रण' की मालती शैलबाला का ही प्रतिरूप है। वह भी परम्परावादी समाज की सत्ता स्वीकार नहीं करती।[90] 'घरौंदे' की लवंगलीला,[91] ऊषा,[92] 'संघर्ष' की स्नेहलता,[93] सामाजिक तथा [illegible] आदर्शों के रूप में युग-युगान्तर के निषेध को स्वीकार नहीं करतीं। नारी स्वातन्त्र्य की भावना से नारी समुदाय को आन्दोलित करती हैं, जिससे महिलायें अपनी इच्छानुसार प्रेम करने, इच्छानुसार मातृत्व को प्राप्त करने व तलाक माँगने के अधिकार को प्राप्त कर सकें। 'मुक्तिपथ' की सुनन्दा,[94] प्रमिला,[95] इसी प्रकार की जागरूक भारतीय नारी के आत्मविश्वास को प्रकट करती है।

इस काल (1940-47) में आधुनिक समाज में विवाह संस्था का विरोध मुखर हुआ। 'चाँद' पत्रिका के अनुसार-"पिछले एक-दो दशाब्द में, जब से स्त्री शिक्षा का कुछ अधिक प्रचार हुआ है और पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ समाज में पाई जाने लगी हैं, हमारे समाज पर कुछ नये-नये प्रभाव पड़े हैं, जिनके कारण समाज की व्यवस्था कुछ बदलने लगी है। इन नये प्रभावों से हमारी विवाह-संस्था भी अछूती नहीं बच सकी है।"[96] तत्कालीन भारत की सामाजिक स्थिति संक्रांति कालीन थी। कुछ शिक्षित नारियों ने विवाह को पुरुष प्रधान समाज की

दासता समझा था। 'पर्दे की रानी' की निरंजना का स्पष्ट मत है कि विवाह पुरुष की दासता है।[97] विवाह के सम्बन्ध में 'दादा कामरेड' की शैलबा[illegible] का विचार है—"जब स्त्री को एक आदमी से बंध जाना है और सामाजिक व्यवस्थाओं के अनुसार उसके अधीन रहना है, उस सम्बन्ध को चाहे जो नाम दिया जाये, वह है दासता ही।"[98]

'नीलमणि' की नीलू अभिजात्य पिता की शिक्षित पुत्री है। उसका विवाह बिना उसकी सम्मति के सुयोग्य एवं विद्वान महेन्द्र से होता है। नीलू के अहम् को चोट पंहुँचती है कि बिना उसकी सम्मति के उसका विवाह क्यों किया गया।[99] इसी अहम् के फलस्वरूप वह पति से मानसिक समझौता नहीं कर पाती। यहाँ पर मन-मुटाव का कारण अनमेल विवाह नहीं है, अपितु नारी स्वातन्त्र्य के प्रति बौद्धिक आग्रह होने के कारण विवाह के प्रति नारी का अहम् जनित विद्रोह है।

इस काल में शिक्षित वर्ग के विश्रृंखल दाम्पत्य जीवन की एक नवीन समस्या सामने आती है। 'चाँद' पत्रिका ने अपने लेख 'शिक्षित पति-पत्नी का संघर्ष' में इस नवीन समस्या को उठाया था—"पढ़े-लिखे लड़कों के लिए जब तक शिक्षित लड़कियाँ उनके प्रभाव को बढ़ाने वाली या श्रृंगार की सामग्री रहीं, तब तक तो बहुत अच्छा था, परन्तु बाद में जब उन्होंने अपनी स्थिति तथा समाज की व्यवस्था को समझना शुरू किया, और अपने व्यक्तिगत हितों को समझ कर उन्हें प्राप्त करने में सचेष्ट हुई, तब पति-पत्नियों में एक प्रकार की विषमता पैदा हो गई। पिछले 8-10 वर्षों से स्वतन्त्रता की हलचल के कारण व स्त्री-शिक्षा से एकत्रित प्रभाव के कारण यह स्थिति अधिक दृष्टिगोचर हो रही है। यहाँ तक कि इसे सिनेमा व कहानियों के कथानकों में भी

स्थान मिलने लगा है। इस विषम स्थिति के दो मूल कारण हैं। एक तो शिक्षित स्त्री अपने लिए अधिकार माँगती है, जो सामान्यतया उसकी अपढ़ बहन को प्राप्त नहीं है। दूसरे पुरुष, पढी-लिखी स्त्री की शोभा तो चाहता है, परन्तु उसके अधिकारों को स्वीकार नहीं करता। इस कारण संघर्ष उत्पन्न होता है।"[100]

शिक्षित नारी-पुरुष समान धरातल पर स्थित थे। जैनेन्द्र के 'कल्याणी' की कल्याणी ऐसी ही नारी है, जिसने इंग्लैण्ड से डॉक्टरी की शिक्षा प्राप्त की है, पत्नी डॉक्टरी की प्रैक्टिस करती है। एक ओर उसका पति चाहता है कि डॉक्टरी की प्रैक्टिस करे तथा परिवार के लिए धन अर्जित करे, दूसरी ओर कठोर पतिव्रत धर्म के निर्वाह की आशा करता है। पति चाहता है कि उसकी पत्नी एक निष्ठ गृहिणी होकर रहे, अन्तःपुर की सीमा से बाहर न निकले तथा पवित्रता के निर्वाह के लिए अनिवार्य रूप से अन्य पुरुषों के सम्पर्क में न आ सके।[101] उसके परम्परागत भारतीय संस्कार स्वीकार नहीं करते कि नारी का स्वतन्त्र अस्तित्व है। कल्याणी का अभिप्राय स्पष्ट है कि नारी के पतिव्रत धर्म के प्रति पुरुष वर्ग का जो कट्टर दृष्टिकोण है, उसे उदात्त करना। पुरुष वर्ग को नारी के सम्बन्ध में न केवल अपने सामाजिक विचार बदलने होंगे, अपितु संस्कारों में भी परिवर्तन लाना होगा।

इस काल में विवाह से सम्बन्धित अनेक समस्याओं को देखते हुए एक वर्ग अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन करने लगा था। जून 1946 में 'चाँद' में छपे एक लेख में अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन किया गया है—"ध्यान से देखने पर हमें मालूम होगा कि विवाह के मार्ग का सबसे बड़ा रोड़ा जाति है। यह विवाह को अपने उद्देश्य में

कभी भी सफल नहीं होने देता। देश के कोने-कोने में इसके विरुद्ध आवाज उठायी जा रही है। कट्टर से कट्टर सनातनी भी जानते हैं कि अपनी जाति के भीतर अपने पुत्र और पुत्रियों के लिए योग्य कन्या और वर मिलना बहुधा कठिन होता है और अनमेल विवाहों के कारण किस प्रकार वे अपने वैवाहिक कर्तव्यों का त्याग कर देते हैं। समाज की वर्तमान स्थिति पर ध्यान दें तो देखेंगे कि अन्तर्जातीय विवाह उसके लिए रामबाण है, सारे रोगों की एकमात्र औषधि है। इससे न केवल दहेज प्रथा मिटेगी वरन् जाति बन्धन भी टूटेंगे।"[102] यद्यपि समाज में अन्तर्जातीय विवाह की माँग उठने लगी थी तथापि ऐसे विवाहों की संख्या बहुत ही कम थी। अधिकांश लोग जटिल जाति बन्धनों को तोडने का साहस नहीं जुटा पा रहे थे। अन्तर्जातीय विवाह उंगलियों पर गिने जा सकते थे।

दहेज ने एक व्यापक समस्या का रूप धारण कर लिया था। 1940 के दशक में इस प्रथा को समाप्त करने के लिए भी आवाजें उठने लगी थीं। एक लेख के अनुसार[103]—"जो उत्साही युवक हिन्दू समाज का सुधार करना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि वे इस घातक प्रथा को समूल नष्ट करने का प्रयत्न करें और न सिर्फ उसका विरोध ही करें, वरन् उसे कार्यरूप में परिणत करें। स्वयं उसके उदाहरण बनें क्योंकि वास्तव में दहेज प्रथा ने हिन्दू समाज को खोखला कर दिया है।" 1947 तक दहेज प्रथा की समाप्ति के विचारों व प्रयासों ने व्यापक रूप धारण नहीं किया था। यह प्रथा बनी रही और धीरे-धीरे इस समस्या की विकरालता बढ़ती गयी।

1947 तक उत्तर प्रदेश के समाज में महिलाओं की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन आये। महिलाओं में राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना बलवती हुई। शिक्षित नारियों ने आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त की, लेकिन उत्तर प्रदेश की महिलाओं का एक बहुत बड़ा वर्ग ऐसा भी था जो इस राजनीतिक सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, आर्थिक जागरुकता से अछूता था। राजनीति को अपना कार्यक्षेत्र बनाने वाली महिलाओं की संख्या बहुत कम थी। ये मुख्यतः उच्च वर्गीय परिवारों से सम्बन्धित थीं। सामान्य स्त्रियाँ अभी भी इनकी गतिविधियों से अनभिज्ञ थीं और उपेक्षा, अवहेलना व शारीरिक-मानसिक शोषण से ग्रस्त थीं। इन महिलाओं की स्थिति का वर्णन 'कमला' पत्रिका के एक लेख में किया गया है-"औसत नारी आज भी सामाजिक दृष्टि से पिछडी है। वह अपने हितों और अधिकारों से अनभिज्ञ है। नब्बे प्रतिशत ग्रामों में बसने वाली नारियाँ जाग्रति के इस ऊषाकाल में भी अन्धकार से आच्छादित हैं। उन्हें दुनिया की कोई खबर नहीं है। उन्हें आधुनिकतम किसी आविष्कार का ज्ञान नहीं है और उन्हें अवनति का जहाँ दु ख नहीं है, वहाँ यह विचार करने का ज्ञान भी नहीं है कि उनके जीवन और उनकी पारिवारिक अवस्था में किसी तरह का सुधार हो सकने की भी कोई गुंजाइश है या नहीं।"[104]

नगरीय महिलाओं के विषय में इसी लेख में आगे लिखा गया है-"यों नगर की महिलाओं में आज काफी जागृति दिखती है। शिक्षा की उज्जवल किरणों के आलोक में इनकी दशा अपेक्षाकृत यथेष्ट उन्नत दिखती है। परन्तु इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि वह केवल वाह्याडम्बर मात्र है। वास्तविक उन्नत महिलाओं की संख्या तो अंगुलियों पर ही गिनी जाने लायक है। इनी-गिनी महिलाओं के

अतिरिक्त अन्य सभी बहनें ऐसी बातों से कोसों दूर रहने में ही अपना गौरव समझती हैं। इसका एक कारण है कि सदियों से स्त्रियों मे अबला होने के जो भाव भर दिये गये हैं, सार्वजनिक कार्यों को केवल कानों से सुन कर सन्तोष कर लेने के जो मन्त्र पढ़ा दिये गये हैं, उनका प्रभाव अभी भी उन्हें ऐसा करने को मजबूर किया करता है।"

1948 में छपे 'कल्याण' पत्रिका के नारी अंक में नारी की दोयम दर्जे की स्थिति को मान्यता प्रदान की गयी तथा नारी की सती-सावित्री भूमिका का उपदेश दिया गया। 'पतिव्रता के लक्षण' लेख में नारी के कर्तव्यों की इस प्रकार व्याख्या की गयी है-"पतिव्रता, साध्वी और सती स्त्री वही है, जो सर्वदा अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर अपने पति पर निर्मल प्रीति रखती है तथा पति के आज्ञानुसार चलकर उनकी आज्ञा का पालन करती है अर्थात् जो तन, मन और वचन से पति की सेवा के सिवा दूसरी कोई इच्छा नहीं करती। बिना कार्य घर के बाहर नहीं जाती। सबके उठने से पहले उठकर स्वच्छता पूर्वक घर का सारा काम करती है। पति को नियम पूर्वक प्रथम भोजन कराकर फिर स्वयं भोजन करती है।"[105] अर्थात् 1947 तक एक बहुत बड़ा वर्ग ऐसा था जो नारी को पुरुष की दासी ही स्वीकार करता था।

भारत में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं की जनसंख्या सदैव ही कम रही है। उत्तर प्रदेश में तो यह संख्या और भी कम है। 1901 से 1947 की अवधि में इसमें कोई परिवर्तन नहीं आया।

प्रति हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या[106]

वर्ष	भारत	उत्तर प्रदेश
1901	972	937
1911	964	915
1921	955	909
1931	950	904
1941	945	907
1951	946	910

समाज में नारी की हीन स्थिति का सर्वप्रमुख कारण उसकी आर्थिक निर्भरता थी। यद्यपि महिलाओं को कुछ सम्पत्तिगत अधिकार प्राप्त हुए थे, परन्तु व्यावहारिकता में वे नहीं के बराबर थे। एक लेख में महिलाओं को प्राप्त सम्पत्तिगत अधिकारों के विषय में लिखा गया था—"सम्पत्ति और पैतृक धन के सम्बन्ध में स्त्रियों की अवस्था को समुचित बनाने के लिए व्यवस्थापिका परिषद में बिलों के द्वारा ऊँची-ऊँची कुलाचें भरी गई थीं, किन्तु उनके तमाम आदर्श मिट्टी में मिल गये। परिमित सीमा में स्थित वर्तमान कानून जिसका सम्बन्ध विवाहित स्त्रियों के लिए ही है, अज्ञान के अनन्त सागर में न्याय की एक बूँद के रूप में प्रमाणित हो रहा है।"[107]

नारी की स्थिति में वास्तविक परिवर्तन लाने के लिए उसके आर्थिक रूप से स्वावलम्बी होने पर बल दिया जाने लगा—"नारी स्वतन्त्रता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा उसकी आर्थिक पराधीनता है। समाज ने निर्दयता पूर्वक आजीविका के अधिकांश मार्ग उसके लिए बन्द कर रखे हैं और इसलिए जीवन निर्वाह की खातिर उसको प्रायः किसी पुरुष का सहारा लेना पड़ता है। देश में जैसे-जैसे नारी आन्दोलन की वृद्धि होती जा रही है, जागृत नारियों को यह अनुभव हो रहा है कि जब तक वे आर्थिक रूप से अंशतया अथवा पूर्णतया स्वतन्त्र न होंगी, तब तक वे किसी भी क्षेत्र में स्वाधीन भाव सेआगे कदम न बढा सकेंगी। पुरुष की भृकुटी टेढ़ी होते ही उनको अपना बढ़ाया हुआ कदम पीछे खींच लेना होगा क्योंकि भरण-पोषण उसी पर निर्भर है। स्वावलम्बन की शक्ति बड़ी महान है और जब तक नारियाँ इसका सहारा न लेंगी, उनके उद्धार की आशा बहुत कम है।"[108]

1940 का दशक भारत के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण था। उत्तर प्रदेश की महिलायें भी राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक धरातल पर किये जा रहे कार्यक्रमों में अपनी भागीदारी से पुरुषों की भांति अपनी छवि पुष्ट कर रही थीं। महिलायें श्रेष्ठ नागरिकों के रूप में उठ खड़ी हुई थीं। उन्होंने राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था। श्रीमती सरोजिनी नायडू, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, विजय लक्ष्मी पंडित, अरुणा आसफ अली, सुचेता कृपलानी आदि कुछ जुझारू राजनेत्रियाँ अब अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की राजनेता बन गई थीं।[109] कांग्रेस की सरकार बनने पर इन महिलाओं ने नीति निर्णय के अधिकार, पद प्राप्त किये थे तथा शासन की बागडोर संभाली थी। उत्तर प्रदेश की अधिकांश जागरूक महिलायें स्वातन्त्र्य संघर्ष की उपलब्धियों में

संलग्नता के परिणामों का अनुभव कर रही थीं, वे लोकलबोर्डों और नगरपालिकाओं की सदस्या बनी थीं।[110] महिलाओं में नवीन जागृति की लहर व्याप्त हुई। निचले तबके की स्त्रियों में भी राजनीतिक चेतना का विकास हो रहा था और वे राष्ट्रीय राजनीतिक संगठनों में तेजी से सम्मिलित हो रही थीं।[111] महिलाओं में नये जीवन मूल्यों का उदय हुआ था। के.एम. पणिक्कर के इस कथन में अत्यधिक सत्यता प्रतिबिम्बित होती है[112]—"सामाजिक-राजनीतिक क्षेत्रों में भागीदारी के कारण महिलायें अपनी दासता के प्रति सचमुच अधिकाधिक सजग हुईं और उन्होंने उस पितृसत्तात्मक विचारधारा से स्वयं को मुक्त करने का प्रयास किया।"

बीसवीं सदी के प्रथम 50 वर्षों में स्त्री शिक्षा के विकास, स्त्रियों की राष्ट्रीय आन्दोलन में भागीदारी, स्त्रियों की सामाजिक जागरुकता तथा पर्दा प्रथा में कमी ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी थी कि स्त्रियों के विकास का मार्ग खुल गया। यही कारण है कि इस सदी के प्रथम 50 वर्षों को 'नारी जागरण का युग' और स्वतन्त्रता के प्रश्चात् जो युग प्रारम्भ होता है उसे 'नारी-प्रगति का युग' कहा जा सकता है। 1900 से 1947 की अवधि में नारी ने अपनी सामाजिक पराधीनता और देश की राजनीतिक पराधीनता की बेड़ियाँ काट फेंकने के लिए एक साथ संघर्ष किया ओर अपने लिए एक लक्ष्य, एक मार्ग निर्धारित किया। यह उसी का परिणाम है कि आज जीवन के हर पहलू में नारी अपना स्थान बना चुकी है। चाहे वह क्षेत्र शिक्षा का हो, विज्ञान का हो, खेलकूद का हो, राजनीति का हो, प्रशासन का या सिनेमा-रंगमंच का।

सन्दर्भ

1. ए.आई.सी.सी. रिकार्ड्स, फाइल–जी–50, 1939

2. ए.आई.सी.सी. रिकार्ड्स, फाइल नं.–डब्ल्यू.डी.–9,1940, पृ. 162

3. चाँद, फरवरी, 1940, पृ. 249

4. द इंडियन एनुअल रजिस्टर, भाग–2, 1940, पृ. 34

5. सीतारमैया, पट्टाभि, कांग्रेस का इतिहास, भाग–2, पृ. 241

6. कूपलैण्ड, आर., इण्डियन पॉलिटिक्स (1936–42), पृ. 249

7. नेशनल हेराल्ड, 4 दिसम्बर, 1940

8. द लीडर, 7 दिसम्बर, 1940

9. नेशनल हेराल्ड, 12 जनवरी, 1941

10. वही, 29 जनवरी, 1941

11. वही, 21 फरवरी, 1941

12. वही, 5 दिसम्बर, 1940

13. आज, 27 नवम्बर, 1940

14. आज, 18-21 दिसम्बर, 1940

15. आज, 26 जनवरी, 1941

16. आज, 1 फरवरी, 1941

17. स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिक, जिला आगरा

18. आज, 8 दिसम्बर, 1942

19. स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिक, जिला मेरठ

20. द इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया, 12 जनवरी, 1975, पृ. 25

21. आज, 1 फरवरी, 1941

22. आज, 29 नवम्बर, 1940

23. होम डिपार्टमेण्ट पोलिटिकल (आई) फाइल नं. 18/4/41

24. आज, 3 अक्टूबर, 1941

25. आज, 6 अक्टूबर, 1941

26. सीतारमैया, पट्टाभि, कांग्रेस का इतिहास, भाग-2, पृ. 395-397

27. तेन्दुलकर, डी.जी., महात्मा, खण्ड 6, पृ. 199

28. आज, 10 अगस्त, 1942

29. जैदी, ए. मुईन, द वे आउट टु फ्रीडम, पृ. 13

30. होम पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट प्रोसीडिंग्स (आई), फोर्टनाइटली रिपोर्ट, फाइल न. 18/8/42

31. आज, 11 अगस्त, 1942

32. निजामी, तब्बसुम, लखनऊ जनपद का राष्ट्रीय इतिहास, पृ. 286

33. वही, पृ. 290-297, 301

34. वही, पृ. 301

35. अमृत बाजार पत्रिका, 11 अगस्त, 1942

36. जैदी, ए. मुईन, द वे आउट टु फ्रीडम, पृ. 10

37. होम पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट प्रोसीडिंग्स (आई) फाइल नं. 18/10/42

38. स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिक, जिला कानपुर

39. होम पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट प्रोसीडिंग्स (आई) फाइल नं. 18/10/42

40. पंडित, विजयलक्ष्मी, स्कोप ऑफ हैप्पीनेस, पृ. 158

41. सहाय, गोविन्द, उन्नीस सौ बयालिस का विद्रोह, पृ. 194-95

42. जैदी, मुईन, वे आउट टु फ्रीडम, पृ. 109

43. पंडित, विजयलक्ष्मी, प्रिजन डेज, पृ. 3

44. अमृत बाजार पत्रिका, 28 अगस्त, 1942

45. वही, 31 अगस्त, 1942

46. पंडित, विजयलक्ष्मी, प्रिजन डेज, पृ 60

47. नैनी सेन्ट्रल जेल रिकार्ड्स, 1942

48. शर्मा, केशव चन्द्र, परिचय इतना इतिहास यही, पृ. 53

49. स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिक, जिला मेरठ

50. वही, जिला आगरा

51. बिपिन चन्द्र, भारत का स्वतन्त्रता संग्राम, पृ. 374

52. स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिक, कुमायूँ डिवीजन

53. सरकार, सुमित, आधुनिक भारत, पृ. 447-450

54. वही, पृ. 449-450

55. वोहरा, आशा रानी, भारतीय नारी दशा और दिशा, पृ. 17

56. वही, पृ. 17

57. सरकार, सुमीत, आधुनिक भारत, पृ. 449

58. आज, 25 सितम्बर, 1945

59. आज, 8 अक्टूबर, 1945

60. रीब्ज़ पी.डी., ग्राहम बी.डी., गुडमैन, जे एम., ए हैण्ड बुक टु इलेक्शन्स इन उत्तर प्रदेश, 1920-1951, पृ. 358-377

61. आज, 2 अप्रैल, 1946

62. द इंडियन एनुअल रजिस्टर, भाग-2, 1956, पृ. 317-324

63. अस्थाना, प्रतिमा, वीमेंस मूवमेन्ट इन इण्डिया, पृ. 205

64. वही, पृ. 261-262

65. सरस्वती, मार्च, 1940, पृ. 272

66. अस्थाना, प्रतिमा, वीमेंस मूवमेन्ट इन इण्डिया, पृ. 96

67. चाँद, फरवरी, 1941, पृ. 279

68. अस्थाना, प्रतिमा, वीमेंस मूवमेन्ट इन इण्डिया, पृ. 97

69. वही, पृ. 98

70. वही, पृ. 99

71. एनुअल रिपोर्ट ऑफ द ट्वेन्टियथ आल इण्डिया विमेन्स कान्फ्रेंस (1947)

72. अस्थाना, प्रतिमा, वीमेन्स मूवमेन्ट इन इण्डिया, पृ. 99-100

73. विशाल भारत, फरवरी, 1940, पृ 161

74. प्रोग्रेस ऑफ एजुकेशन इन इण्डिया, 1917-47

75. मुखोपाध्याय, कैरोल चैपनिक, सीमोर सूसान (सम्पादित) वुमन, एजुकेशन एण्ड फैमिली स्ट्रक्चर, पृ. 41-42

76. प्रोग्रेस ऑफ एजुकेशन इन इण्डिया, 1917-47

77. प्रोग्रेस ऑफ एजुकेशन इन इण्डिया, 1937-47, पृ. 36

78. जनगणना विभाग के आंकड़ों पर आधारित

79. विशाल भारत, फरवरी, 1940, पृ. 161

80. मुखोपाध्याय, कैरोलचैपनिक, सीमोर सूसान (सम्पादित) वुमन, एजुकेशन एण्ड फैमिली स्ट्रक्चर, पृ. 45

81. सरस्वती, नवम्बर, 1936, पृ. 494-495

82. चाँद, अक्टूबर, 1946, पृ. 164

83. चाँद, फरवरी 1941, पृ. 211

84. चाँद, जनवरी, 1941, पृ. 187

85. चाँद, अक्टूबर, 1940, पृ 361

86. चाँद, अप्रैल, 1940, पृ. 432

87. कमला, जून, 1940, पृ. 227-228

88. यशपाल, दादा कामरेड, पृ. 172

89. चाँद, जनवरी, 1941, पृ. 127

90. निमन्त्रण, (47)

91. रांगेय राघव, घरौंदे, पृ. 45

92. वही, पृ. 61

93. कौशिक, विशम्भर नाथ शर्मा, सघर्ष, पृ. 146

94. मुक्तिपथ, पृ. 175

95. वही, पृ. 178

96. चाँद, फरवरी, 1941, पृ. 211

97. जोशी, इलाचन्द, पर्दे की रानी, पृ. 22

98. यशपाल, दादा कामरेड, पृ. 142

99. नीलमणि, पृ. 74

100. चाँद, फरवरी,1941, पृ. 211-212

101. जैनेन्द्र, कल्याणी, पृ. 33

102. चाँद, जून 1946, पृ. 152

103. चाँद, अप्रैल, 1940, पृ. 393

104. कमला, नवम्बर, 1938, पृ. 122

105. कल्याण, नारी अंक, जनवरी 1948, पृ. 238

106. टुवर्ड्स इक्वालिटी रिपोर्ट ऑफ द कमिटी ऑन द स्टेटस ऑफ विमेन इन इण्डिया, 1974, पृ. 10, 15

107. चाँद, फरवरी, 1940, पृ. 184

108. चाँद, अप्रैल, 1940, पृ. 432-433

109. देसाई, ए.आर., भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ. 222

110. वही, पृ. 223

111. वही, पृ. 223-224

112. पणिक्कर, के.एम., स्टडीज इन हिस्ट्री, खण्ड-3, अंक-1 (1987) की प्रस्तावना, पृ. 7

***

अध्याय-6

नवयुग एवं नारी

15 अगस्त, 1947 को भारत लगभग 200 वर्षों की गुलामी से एक लम्बे संघर्ष के पश्चात् स्वतन्त्र हुआ। यह सम्पूर्ण भारत के लिए एक नवीन युग का प्रारम्भ था। 1947 तक स्त्री जाति भी कई मंजिलों से गुजर चुकी थी, पूरी उदासीनता, उपहास, आलोचना और-स्वीकृति के साथ-साथ राजनीतिक, सामाजिक चेतना के गलियारे से समानाधिकार की ओर। राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका ने उन्हें हर प्रकार के शोषण और परतन्त्रता के प्रति सचेत ही नहीं किया वरन् अपने सामाजिक दायित्वों तथा अधिकारों के प्रति नई जागृति भी प्रदान की। महिलाओं ने पारिवारिक और सामाजिक दोनों ही स्तरों पर हो रहे महिला शोषण को राष्ट्रीय बहस का विषय बनाया।[1]

भारत का संविधान और महिलायें

1947 में देश के स्वतन्त्र होने के उपरान्त देश में गठित नयी सरकार ने अपना कार्य प्रारम्भ करते ही स्त्रियों की स्थिति में सुधार करने की दिशा में कार्य करना आरम्भ किया। आजादी के पूर्व ही ऐसी परिस्थितियाँ बनीं कि देश के बुद्धिजीवियों ने यह सोचना आरम्भ कर दिया था कि देश की 50 प्रतिशत आबादी की अनदेखी करके देश का विकास नहीं किया जा सकता। फलस्वरूप सविधान निर्माताओं ने संविधान के प्रारम्भ में ही इस बात का उल्लेख किया कि जाति, धर्म, लिंग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता।

भारत के संविधान ने प्रत्येक स्त्री और पुरुष को अनुच्छेद-14 के अन्तर्गत समानता का अधिकार प्रदान किया। अनुच्छेद 15 स्पष्ट शब्दों में बताता है कि "राज्य केवल धर्म, मूल वंश, जाति,

लिंग, जन्म स्थान के आधार पर नागरिकों के बीच कोई विभेद नहीं करेगा" अर्थात् हमारा संविधान स्पष्ट रूप से यह कहता है कि पुरुष एवं महिला को समान अधिकार प्रदान किये गये हैं। इतना ही नहीं अनुच्छेद के खण्ड 3 में स्त्रियों के लिए विशेष व्यवस्था भी दी गई है। हमारे संविधान निर्माताओं का मानना है कि स्त्रियों की स्वाभाविक प्रकृति ही ऐसी होती है, जिसके कारण उन्हें विशेष संरक्षण की आवश्यकता होती है।[2] इस संवैधानिक सहानुभूति के पीछे छिपा दर्शन एक विचारणीय प्रश्न है। नारी सदियों से अधीन, अधिकार विहीन, पीड़ित, शोषित और आश्रित रही है। युगों की पराधीनता और पुरुष परमेश्वर की आराधना ने उसे इतना पंगु और निर्बल बना दिया है कि बाहर निकल कर भी वह अपनी रक्षा करने में असमर्थ है। अस्तित्व के संघर्ष में स्त्रियों की शारीरिक बनावट और उसके स्त्रीजन्य कार्य उसे दुःखद स्थिति में कर देते हैं। अतः संविधान निर्माताओं का मानना था कि उन्हें विशेष संरक्षण की आवश्यकता है।

न्यायालय द्वारा भी महिलाओं के लिए शिक्षण सस्थाओं में आरक्षण उचित माना गया है। इतना ही नहीं अनुच्छेद 42 के तहत महिला को विशेष प्रसूति अवकाश प्रदान करने की बात कही गई है।[3] भाग 4(अ), जो कि मूल कर्तव्यों के बारे में है, में भी स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि हमारा दायित्व है कि हम हमारी संस्कृति की गौरवशाली परम्परा के महत्व को समझें तथा ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो कि स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हों।[4]

अनुच्छेद 35(द) में स्पष्ट शब्दों में समान कार्य के लिए समान वेतन की बात कही गई है। अर्थात् महिला एवं पुरुष में वेतन

के बारे में राज्य किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं करने के लिए बाध्य है।[5]

संविधान के अनुच्छेद 325 के अनुसार निर्वाचक नामावली में महिला एवं पुरुष दोनों को ही समान रूप से सम्मिलित होने का अधिकार प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 325 बताता है कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के लिए एक साधारण निर्वाचक नामावली होगी एवं केवल धर्म, मूल, वंश, जाति, लिंग या इनमें से किसी आधार पर कोई भी व्यक्ति नामावली में सम्मिलित किये जानेके अयोग्य नहीं होगा, अर्थात् इस अनुच्छेद द्वारा हमारे संविधान निर्माताओं ने यह दर्शाने की कोशिश की है कि भारत में पुरुष और स्त्री को समान मतदान अधिकार दिये गये हैं।[6]

संविधान के इन प्रावधानों को देखकर हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि भारत में विधि शासन याने कि 'रूल ऑफ लॉ' है तथा वह पुरुष व स्त्री में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं करता। इन अनुच्छेदों के द्वारा संविधान ने महिलाओं की सामाजिक स्थिति में निम्नलिखित सुधार करने का प्रयास किया[7] :

1. वैधानिक स्तर पर महिलाओं के अधिकारों व उनके स्तर में सुधार का प्रयास
2. नारी शिक्षा के विकास का प्रयास
3. स्वास्थ्य
4. आर्थिक निर्भरता

5. परिवार और समाज में उचित अधिकार देने का प्रयास

6. सामाजिक उत्पीड़न की शिकार होने से महिलाओं को बचाने का प्रयास व ऐसी महिलाओं की उचित देखभाल।

7. महिला कल्याण संगठनों की स्थापना का प्रयास

संविधान में महिलाओं को उचित स्थान मिलने से ही महिलाओं की सभी समस्याओं का निराकरण नहीं हो गया। अतः सरकार ने हिन्दू स्त्रियों की स्थिति में सुधार करने के लिए संसद में 1954–56 में कानून बनाकर हिन्दू विधि में पाँच प्रमुख सुधार किये[8]–

1. विशेष विवाह अधिनियम, 1954

2. हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955

3. हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956

4. हिन्दू दत्तक तथा भरण पोषण अधिनियम, 1956

5. हिन्दू अवयस्कता और संरक्षता अधिनियम, 1956

हिन्दू विधि में हुए इन प्रमुख परिवर्तनों ने हिन्दू महिला के अधिकारों को अधिक विस्तृत कर दिया। 'विशेष विवाह अधिनियम' (1954) के द्वारा सिविल विवाह को मान्यता प्रदान की गयी, जिसमें विभिन्न धर्मावलम्बियों को बिना अपना धर्म बदले आपस में विवाह करने की अनुमति दी गई। परस्पर सहमति से तलाक को मान्यता मिली व विवाह की न्यूनतम आयु लड़कों के लिए 21 वर्ष व लडकियों के लिए 18 वर्ष निर्धारित की गई।[9] इस प्रकार इस अधिनियम द्वारा

बाल-विवाह को समाप्त करने, असंगत और कष्टप्रद विवाहों को बनाये रखने की हिन्दू महिलाओं की बाध्यता को कुछ सीमा तक समाप्त किया गया व सिविल विवाहों को मान्यता देकर हिन्दू महिलाओं की स्थिति मे सुधार करने का कानूनी प्रयास किया गया।

1955 के 'हिन्दू विवाह अधिनियम' के द्वारा अन्तर्जातीय विवाहों को वैधानिकता प्राप्त हुई, बहु-विवाह का निषेध कर दिया गया। तीन विशेष आधारों और शर्तों पर तलाक लेने-देने की व्यवस्था की गई।[10]

भारत में महिलाओं को सम्पत्तिगत अधिकार प्रदान करने के लिए 'हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम,' 1956 द्वारा महिलाओं को सम्पत्ति पर पूर्ण [illegible] प्रदान किया गया।[11] इस अधिनियम द्वारा महिलाओं के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारों में आमूल-चूल परिवर्तन लाया गया। एक लड़की अपने पिता की सम्पत्ति में से उतनी ही सम्पत्ति पाने की अधिकारी है, जितना कि पुत्र। स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दू विधि द्वारा महिलाओं को भी पुरुषों के बराबर अधिकार देने का प्रयास किया गया, किन्तु हमारी सामाजिक व्यवस्था तथा रूढ़िवादी विचारों ने इसे व्यवहार रूप में स्वीकार नहीं किया। आज भी अधिकांश महिलाओं को अपने कानूनी अधिकारों का न तो ज्ञान है और न कोई लाभ। पिता के धन में पुत्री का अधिकार आज भी भारतीय समाज को स्वीकार नहीं है।

हिन्दू विधि में सुधार करके हिन्दू महिलाओं की स्थिति में सुधार के प्रयास तो हुए, दूसरी ओर मुस्लिम विधि अपने मूलरूप में ज्यों की त्यों बनी रही। मुस्लिम विधि वेत्ताओं का मानना है कि मुस्लिम विधि में महिलाओं को बहुत से अधिकार प्राप्त हैं, किन्तु

मुस्लिम समाज में अधिकांश महिलाओं की दयनीय दशा किसी से छिपी नहीं है।

हमारे संविधान का अनुच्छेद 23 एवं 24 शोषण के विरुद्ध अधिकार के बारे में है एवं मानव दुर्व्यापार और बलात् श्रम का प्रतिषेध करता है। यह सर्वविदित है कि भारतीय समाज में यह दो बडे कलंक—(1) नारी क्रय-विक्रय एवं (2) बेगारी; सदियों से समाज का एक अंग बनकर चले आ रहे हैं। इस प्रकार के क्रय-विक्रय को समाप्त करने और वेश्यावृत्ति के लिए स्त्रियों और लड़कियों के व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए संसद ने 1956 में 'स्त्री एवं लड़की अनैतिक व्यापार निरोध अधिनियम' पारित किया। इसके द्वारा न केवल व्याभिचार, बल्कि समाज के साथ होने वाले किसी भी शोषण के विरुद्ध, आवाज उठाई गई है। अधिनियम में वेश्यालय चलाने, वेश्यावृत्ति से होने वाली आय को जीविका का साधन बनाने, वेश्यावृत्ति वाले स्थानों पर लड़कियों को, स्त्रियों को लाने-ले जाने और वहाँ जाने के लिए उकसाने और ऐसे स्थानों पर किसी स्त्री या लड़की को रोकने जैसे अपराधों के लिए दंड की व्यवस्था की गई है।[12] इन कानूनों के पारित होने के बावजूद भी समाज में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अनैतिक देह व्यापार आज भी बड़े पैमाने पर चल रहा है।

समाज और महिलायें

अनेक कानूनों के निर्माण और संविधान द्वारा नारी को समानता का अधिकार दिये जाने के बावजूद भी समाज में अधिकांश महिलाओं की स्थिति थोड़े बहुत परिवर्तनों के बाद भी यथावत् बनी

रही। पितृसत्तात्मक समाज में कन्या का जन्म अधिकांश परिवारों के लिए अभाग्य का प्रतीक बना रहा। सामाजिक जटिलता व दहेज आदि की समस्याओं के बीच कन्या को बोझ माना जाता रहा। उनकी लड़ाई का क्षेत्र देश और समाज के स्थान पर घर बना रहा। आर्थिक और राजनैतिक अधिकारों से पहले उन्हें सामाजिक और वैयक्तिक अधिकरों के लिए लड़ना पड़ता है। ऐसी स्थिति में उनका कर्तव्य और दायित्व दोहरा हो जाता है—स्वयं नई व्यवस्था के लिए लडना और अपने पुरुषों (पिता, पति, भाई, पुत्र) को उसके लिए तैयार करना। न मालूम किन-किन कठिनाइयों और संघर्षों के बाद जब नारी पुरुष के शीशमहल का द्वार तोड़कर बाहर आने में समर्थ हुई है, तो उसके सामने संसार एक बहुत बड़े प्रश्न सूचक चिन्ह के रूप में मुँह बाये खड़ा है। वह कभी दहेज की बलिवेदी पर आदमी की आर्थिक पशुता का या कहीं बलात्कार के रूप में उसकी शारीरिक वासना का शिकार हो जाती है या फिर घर की मर्यादा एवम् इज्ज़त को बचाये रखने के लिए रोज़ मार खाती है एव पति के ताने व यातनाएं बर्दाश्त करती है—अथवा धर्म के नाम पर पति की चिता पर जिन्दा जलायी जाकर सती का रूप धारण करती है या वेश्यालयों में बैठ आदमी की हवस को पूरा करती है—अथवा पति के घर में पैरों की धूल, पैरों की जूती, चरणों की दासी, कुलटा, कुलक्षिणी, व्याभिचारिणी, बदजात, बदचलन, आवारा आदि शब्दों से सुशोभित की जाती है। वह अधिकांशतः इन सब यातनाओं को चुपचाप बिना किसी विरोध के सहन करती है।

राहुल सांकृत्यायन ने तो महिलाओं को यहाँ तक कहा है—"भागो नहीं दुनिया को बदलो।" अर्थात् औरतों को उन्होंने उठने एवं स्वयं संघर्ष कर अपने अधिकारों के लिए लड़ने की बात कही है। किन्तु

दुर्भाग्य है कि शिक्षा के अभाव में आज भी अधिकांश महिलाओं को यह पता नहीं कि उसके क्या अधिकार हैं। आज भी जहाँ मौका आता है वह शोषण का शिकार हो जाती है।[13]

दहेज

दहेज समाज पर एक बहुत बडा कलंक बन चुका था एवं दिन-प्रतिदिन इसका रूप बढ़ता ही चला जा रहा है। वर्ष 1947 में दहेज से सम्बन्धित नव-वधुओं के मृत्यु के आँकड़े स्पष्ट रूप से देखने को नहीं मिलते, किन्तु विभिन्न कारणों से महिलाओं की मृत्यु के आँकडे आसानी से देखे जा सकते हैं। स्वतन्त्रता के बाद नव-वधुओं को जिन्दा जला देने के उदाहरण मिलने लगे। लड़के बाजार में बिकने वाली वस्तु की तरह बन गये हैं, जो जितना पढा-लिखा और जितने सम्पन्न परिवार का होगा उसकी उतनी ही ज्यादा कीमत बाज़ार में आंकी जाने लगी।[14] दहेज चूंकि आर्थिक संकट के रूप में समाज मे जाना जाने लगा, इसलिए इसे पुत्री के जन्म से जोड़कर देखा जाने लगा। इसने नारी के उत्पीड़न में एक नये अध्याय की शुरुआत की। पहले बालिका वध की प्रथा प्रचलित थी लेकिन अब जन्म से पूर्व ही गर्भ में बालिका शिशु की हत्या का घृणित कार्य प्रारम्भ हुआ। यह कुरीति दहेज की देन थी और अनेक प्रतिबन्धों के बाद आज भी विद्यमान है। साधारणतया हमारी महिलायें आर्थिक रूप से परतन्त्र हैं। सामाजिक मामलों में उनका सरोकार अधिकांशतः टूटा हुआ है। इसीलिए घरों के अन्दर गृहदासी का जीवन व्यतीत करना उनकी नियति बन गयी है। दहेज के नाम पर होने वाली मौतें इसका उदाहरण हैं। उत्तर प्रदेश के लगभग सभी क्षेत्र इस कुप्रथा का शिकार हैं। स्वतन्त्रता के पूर्व दहेज प्रथा मृत्यु का कारक

नहीं थी, लेकिन आगामी वर्षों मे दहेज के लिए महिलाओं को जलाये जाने की प्रथा आम हो गयी है।

विधवायें

समाज में विधवाओं की स्थिति भी समाज के पितृसत्तात्मक स्वरूप के जटिल, असंगत तथा ऐतिहासिक स्वरूप को प्रकट करती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति तक ऐसी परिस्थितियाँ बनने लगी थीं कि विधवा-पुनर्विवाह को सामाजिक स्वीकृति मिलने लगी थी, किन्तु पुनर्विवाह को व्यापकता प्राप्त नहीं हो पाई थी। 'चाँद' पत्रिका के एक लेख के अनुसार—"आज से साठ वर्ष पूर्व ही बाल-विधवाओं के पुनर्विवाह ने भारत में अपना अस्तित्व स्थापित कर लिया था, किन्तु यह एक पराजित विषय है। सर्वसाधारण अब भी इसके खिलाफ है और किसी भी व्यक्ति को ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में अपनी विधवा लडकी को विवाहित करने में अदम्य साहस का सामना करना पडता था।"[15] समाज में विधवाओं के चरित्र को बहुत अधिक महिमामण्डित किया जाता रहा।

कार्यक्षेत्र

1947 तक महिलाओं का कार्यक्षेत्र घर था। शिक्षित महिलायें घर की चहारदीवारी को पार करके पुरुषो के लिए सुरक्षित कार्य क्षेत्रों में भी कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य करने लगी थीं। किन्तु मूल रूप से स्त्रियों का कार्यक्षेत्र घर ही बना रहा। स्वतन्त्रता के बाद भी स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ, यद्यपि कि वाह्य क्षेत्र में स्त्रियों का दखल दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया।

मूल रूप से स्त्रियों का कार्यक्षेत्र घर और पुरुषों का बाहरी दुनिया है। घरेलू क्षेत्र में स्त्रियों का कार्य खाना बनाना, घर की साफ-सफाई करना, बच्चों का लालन-पालन करना आता है। घर के आर्थिक पक्ष और उत्पादक कार्यों में महिलाओं का योगदान परिवार के सामाजिक-आर्थिक स्तर और उनके धर्म पर निर्भर करता है। महिलायें चाहे कारखानों, खदानों, खेतों में कार्य करें, चाहे ऊँचे स्तर की नौकरियों पर हों या केवल घर पर रहें, उन सभी को घरेलू कार्य आवश्यक रूप से करने ही पड़ते हैं।[16]

शिक्षा, रोजगार व नारी प्रगति

बीसवीं सदी के प्रथम पचास वर्षों में स्त्री शिक्षा के प्रसार-प्रचार के लिए सुधारकों, सरकार व नारी संगठनों ने अत्यधिक प्रयास किया था। नारी शिक्षा का इतिहास बताता है कि प्रारम्भ में समाज में शिक्षित स्त्रियों को कई प्रकार के विरोधो का सामना करना पड़ता था। विदेश से शिक्षा प्राप्त करके आने वाली स्त्रियों को जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था, नहीं तो कम से कम उन्हें हेय दृष्टि से तो अवश्य ही देखा जाता था। पंडिता रमाबाई, आनन्दी बाई जोशी, पार्वती बाई अठावले, श्रीमती कर्वे आदि सुप्रसिद्ध समाजसेवी व महिला-शिक्षा में अग्रणी महिलाओं के अनुभव बड़े ही मार्मिक रहे।[17]

स्वतन्त्रता के समय उत्तर प्रदेश में महिला शिक्षा की स्थिति अत्यधिक खराब थी। उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा का प्रतिशत मात्र 4.17 प्रतिशत था। 1947 तक लोकमत स्त्री शिक्षा के पक्ष में हो गया था और सरकार, समाज के कर्णधारों और स्वयं स्त्रियों का ध्यान इस ओर

आकृष्ट हुआ। विवाह के लिए भी शिक्षित स्त्रियों को पसन्द किया जाने लगा। लेकिन यह बदलाव अधिकतर शहरी क्षेत्रों में हुआ। यहाँ भी ऐसा लगता है कि स्त्रियों को उच्च शिक्षा व कार्यकारी स्थिति को अपवाद स्वरूप छोड़कर—आर्थिक, सामाजिक दबावों में ही स्वीकार किया जाता रहा, मन की संस्कारिता वस्तुतः अधिक नहीं बदली थी। महिलाओं की शिक्षा पुरुषों के समान हो या अलग तरह की; नारी का स्थान मुख्यतः घर है या घर-बाहर दोनों, काम करना या कैरियर बनाना उसकी आर्थिक आवश्यकता ही है या कुछ और भी—ये द्विपक्षीय विचार विवाद का विषय बने रहे। समाज ही नहीं स्वयं महिलाये भी किसी निर्णय पर पहुँची हुई नहीं लगीं। शिक्षा को जीवन के साथ जोड़ने के प्रश्न अभी नहीं के बराबर ही थे।[18] ग्रामीण क्षेत्रों में तो शिक्षा की दरें न के बराबर ही थीं।

1947 के बाद महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक जागरुकता के कारण परिस्थितियाँ ऐसी थीं कि स्त्रियों के विकास का मार्ग खुलने लगा था। स्त्रियों की स्थिति में तेजी से सुधार आया। स्त्री शिक्षा को स्वीकृति प्राप्त होने लगी। यह भी स्वीकार किया जाने लगा कि राष्ट्रीय प्रगति के लिए स्त्री शिक्षा आवश्यक है। स्त्रियाँ सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का प्रभावपूर्ण प्रदर्शन करने लगीं और इस धारणा का खंडन करने लगी हैं कि स्त्रियाँ बुद्धि या प्रतिभा में कुछ कम हैं। आर्थिक आत्मनिर्भरता को प्राप्त करते हुए वे अध्यापिका और चिकित्सक के परम्परागत व्यवसायों से इतर अब वैज्ञानिक, वकील, जज, इंजीनियर, पायलट, आई.ए.एस., आई.एफ.एस. ही नहीं बन रहीं, इन उच्च स्तरीय प्रतियोगी परीक्षाओं में पुरुषों से आगे भी निकलने लगी हैं। शिक्षा और आत्मनिर्भरता के कारण व्यापार में, व्यवसाय में, राजनीति में,

प्रशासन में, स्वैच्छिक व वैतनिक सेवाओं में—सभी जगह उनका प्रतिष्ठित स्थान बनने लगा।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त राज्य सभा, लोक सभा, विधान सभा, विधान परिषद, म्युनिसिपल व लोकल बोर्डों में अधिक सख्या में महिलाओं ने प्रवेश किया। प्रथम मंत्री तथा राष्ट्रसंघ के अध्यक्ष के रूप में श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित, प्रथम मुख्यमत्री के रूप में सुचेता कृपलानी तथा प्रथम राज्यपाल के रूप में श्रीमती सरोजिनी नायडू का कार्य उनके अधिकारों के समान ही गरिमामय रहा है।[19]

आजादी के संघर्ष में घरों से बाहर आने का अवसर पाने व फिर वैधानिक समानाधिकारों की गारंटी पाने के बाद कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जहाँ नारी होने के नात नारी का प्रवेश वर्जित हो। पर ग्रामीण और खेतिहर स्त्रियों तथा आम शहरी और कस्बाई स्त्रियों को अभी इस बदलाव की मात्र झलक भर मिली है। उत्तर प्रदेश की औसत नारी आज भी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक दृष्टि से उतनी ही पिछड़ी है। जीवन के सत्य अधिक प्रभावी हैं, विकृति पर प्रकृति की और प्रकृति पर संस्कृति की विजय सुनिश्चित है। अन्ततोगत्वा नारी को अपनी राह बनानी है, जिस पर वह चलेगी, वही रास्ता होगा।

***

सन्दर्भ

1. मजुमदार, वीना, 'चेंजिग टर्म्स ऑफ पोलिटिकल डिस्कोर्स', इकोनामिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, जुलाई 22, 1995
2. मेहता, चेतन, महिला एवम् कानून, पृ. 6-7
3. वही, पृ. 7
4. वही
5. वही
6. वही
7. देसाई, त्रिप्ता, वुमेन इन इण्डिया, पृ. 35-36
8. एवरेट, जान मैटसन, वुमन एण्ड सोशल चेंज इन इण्डिया, पृ. 187-188
9. वही, पृ. 187
10. वही, पृ. 188
11. वोहरा, आशा रानी, भारतीय नारी : दशा और दिशा, पृ. 120
12. वही, पृ. 121

13. मेहता, चेतन, महिला एवम् कानून, पृ 6

14. वही, पृ. 12

15. चाँद, फरवरी, 1940, पृ 184

16. टुवर्ड्स इक्वालिटी, रिपोर्ट ऑन द स्टेटस ऑफ विमेन इन इण्डिया, 1974, पृ. 84

17. वोहरा, आशा रानी, भारतीय नारी . दशा और दिशा, पृ. 24

18. वही

19. भारत वाणी में महादेवी वर्मा का लेख 'नए दशक में महिलाओं का स्थान', पृ. 500

***

उपसंहार

अपने सृजन और प्राकृतिक विशेषताओं के कारण नारी जीवन के कोमल, रहस्यमय और विकासशील पक्ष का पर्याय है, अतः किसी भी समाज और संस्कृति के विकास का मापदण्ड उसमें नारी की स्थिति ही मानी जाती है। पुरुष और स्त्री समाज निर्माण के दो परस्पर पूरक तत्व हैं, पर सदियों से समाज संचालन में पुरुषों ने सक्रिय और स्त्रियों ने निष्क्रिय जीवन व्यतीत किया है। नारी की दासता सामाजिक-आर्थिक संरचना में ही निहित थी और नारी की समस्त अशक्तता का मूल यह था कि उसका जन्म ही नारी के रूप में हुआ था। धार्मिक विधान स्त्रियों की निकृष्ट स्थिति को पवित्र भी बना-बता रहे थे। सदियों से पितृसत्तात्मक समाज में नारी पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक व मानसिक शोषण का शिकार रही। समाज में स्त्रियों को दोयम दर्जे की स्थिति प्राप्त थी। पुरुषों और स्त्रियों की विषमता ने इस कृत्रिम द्विविभाजन को सशक्त किया। समाज में पुरुषों और स्त्रियों की स्थिति में जमीन-आसमान का अन्तर था। दोनों के लिए नीति, नियम, कानून, कर्तव्य, मर्यादा व जीवन जीने के अलग-अलग सिद्धान्त थे। नारी की दयनीयता की पराकाष्ठा यह थी कि स्वयं अपने विषय में निर्णय लेने का अधिकार उसके पास नहीं था। इस पीड़ित, शोषित नियति को स्त्रियों ने न केवल स्वीकार किया था, अपितु समझौतावादी दृष्टिकोण अपनाकर उसे आत्मसात् भी कर लिया था।

19वीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में अंग्रेजों का प्रभुत्व पूर्ण रूप से स्थापित हो गया था। उन्नीसवीं शताब्दी में महिलायें सती-प्रथा व बालिका-वध जैसी बर्बर, क्रूर प्रथाओं का शिकार थीं। बाल-विवाह, बहु विवाह, पर्दा प्रथा, विधवाओं की दुर्दशा आदि कुप्रथायें घर कर चुकी

थीं। जटिल व कुंठित परम्पराओं, व्यवस्थाओं में महिलायें जीवन पर्यन्त बन्दीगृहों जैसी स्थिति में रहती थीं। अन्ध विश्वास, निरक्षरता और अज्ञानता स्त्रियों की सभी समस्याओं के मूल में व्याप्त थे। नारी की स्थिति भारतीय समाज में वस्तुतः लज्जा का विषय थी।

उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध नव-जागरण का युग था। इसमें अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ, जिसके फलस्वरूप नवीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना ने जन्म लिया। भारतीय नारी, जो सदियों से पुरुष प्रधान समाज में रहने के कारण पिछड़े वर्गों में गिनी जाती थी, प्रायः प्रत्येक सुधार आन्दोलन का आधार बनी। पुराण पन्थी मान्यतायें और पुरातन सामाजिक और मनोवैज्ञानिक विचारधारायें इन सुधार आन्दोलनों के विरुद्ध थीं, फिर भी इस दिशा में निरन्तर प्रगति होती रही और अनेक विशिष्ट सफलताओं का पथ प्रशस्त होता चला गया। राजा राम मोहन राय, ईश्वर चन्द विद्यासागर, स्वामी दयानन्द, पंडिता रमाबाई, महर्षि कर्वे का ध्यान सामाजिक सुधार और स्त्री शिक्षा की ओर गया। कर्तव्यनिष्ठ समाज सुधारकों ने अदम्य उत्साह से अनेकानेक सामाजिक संस्थाओं एवं आश्रमों की स्थापना की, जिनमें समाज की उत्पीड़ित नारी को आश्रय दिया गया। इन्हीं संस्थाओं-आश्रमों में नारी की स्थिति में सुधार लाने का एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ।

राजा राम मोहन राय जैसे प्रबुद्ध समाज-सुधारक के प्रयासों के फलस्वरूप 1829 में लार्ड विलियम बेंटिंक ने सती प्रथा को समाप्त किया। ईश्वर चन्द विद्यासागर के प्रयत्नों से 1856 में विधवा पुनर्विवाह को मान्यता प्राप्त हुई। 1870 में पारित एक अधिनियम द्वारा

बालिका-वध की क्रूर प्रथा को समाप्त करने का प्रयास किया गया। बाल-विवाह पर रोक लगाने के लिए 1872 में 'नेटिव मैरिज एक्ट' पारित किया गया, लेकिन यह कानून बहुत प्रभावशाली नहीं रहा। अत एक पारसी सुधारक वी.एम. मालाबारी के प्रयत्नों के फलस्वरूप 1891 में 'सम्मति आयु अधिनियम' पास हुआ। 1874 में पारित 'विवाहित महिला सम्पत्ति अधिनियम' द्वारा स्त्रीधन की व्यवस्था को विस्तृत किया गया। समाज सुधारकों के प्रयासों और इन कानूनों के कारण नारी की स्थिति में सुधार के प्रति समाज सजग तो हुआ परन्तु समाज में व्याप्त कुरीतियों, रुढियों, संस्कारों और परम्पराओं की जड़ें इतनी गहरी थीं कि कानूनी सुधारों के कुछ झट्कों से उन्हें एकदम उखाड़ फेंकना सम्भव नहीं था।

यह भी उल्लेखनीय तथ्य है कि स्त्रियों को दबाकर रखने वाले कानूनों और परम्पराओं को समाप्त करने के लिए प्रारम्भिक प्रयास पुरुष जाति के ही प्रबुद्ध सदस्यों ने किये, परन्तु कुछ जागरूक महिलायें और ऐसी महिलायें, जो इन अनीतियों की शिकार थीं, वे कालक्रम से स्वयं उद्‌बुद्ध हुईं और उन्होंने अपनेस्वयं के नेतृत्व में अपनी मुक्ति के लिए आन्दोलन चलाये थे। उन्होंने अपने संगठन बनाये और अपनी अशक्तताओं के विरुद्ध संघर्ष के लिए मोर्चाबंदी की थी।

नारी की शोचनीय स्थिति का मूल कारण उसकी अशिक्षा थी। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में स्त्री शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए सुधारकों, सरकार व ईसाई मिशनरियों ने प्रयास किया। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक स्त्री शिक्षा के पक्ष मे वातावरण तैयार होने लगा था।

बीसवीं सदी में भी नवीन दृष्टिकोण और नवीन मान्यताओं के विकास की प्रक्रिया विद्यमान रही। महिलाओं की चेतना ने उन्हें इस स्थिति में पहुँचा दिया, जहाँ वे अपनी दयनीय स्थिति से मुक्ति का आन्दोलन प्रारम्भ कर सकती थीं तथा पितृसत्तात्मक व्यवस्था के जटिल बन्धनों को तोड़कर राष्ट्रीय धारा में स्वय को समाहित करते हुए गौरव, पद, सम्मान, शक्ति प्राप्त कर सकती थीं। यद्यपि यह अभिव्यक्ति सम्पूर्ण समाज की महिलाओं की नहीं थी, तथापि उनमें से ही कुछ ने समान सामाजिक–राजनीतिक अधिकारों की इच्छा को सशक्त ढंग से व्यक्त किया तथा पितृसत्तात्मक संस्कृति के विरोध में अपना स्वर मुखरित किया। 1910 में सरला देवी चौधरानी द्वारा स्थापित 'स्त्री महामडल', 1911 में स्थापित 'प्रयाग महिला समिति', 1917 में मद्रास मे स्थापित 'वुमेन्स इण्डिया एसोसिएशन' ऐसे ही महत्वपूर्ण संगठन थे।

इस काल का सर्वाधिक प्रशंसनीय संगठन 1926 में स्थापित 'आल इण्डिया विमेन्स कांफ्रेंस' था। शीघ्र ही इस संगठन की शाखायें उत्तर प्रदेश में स्थापित हुईं। प्रारम्भ में इस संगठन का घोषित लक्ष्य स्त्री साक्षरता था, परन्तु शीघ्र ही यह अनुभव किया जाने लगा कि सामाजिक समस्याओं के निदान के बिना निरक्षरता का उन्मूलन नहीं किया जा सकता। अत. कांफ्रेंस का ध्यान सामाजिक–समस्याओं पर केन्द्रित हुआ। इस संगठन ने बडी कुशलता से नारी जागरण, नारी उत्थान व नारी कल्याण के कार्य किये। यह संगठन स्त्री को उसके वास्तविक अधिकार दिलाने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहा। इस संगठन से जुड़ी प्रमुख–प्रसिद्ध महिलायें थीं—मागरिट कजिन्स, भोपाल की बेगम, सरोजिनी नायडू, राजकुमारी अमृत कौर, विजय लक्ष्मी पंडित, बेगम

हामिद अली, रामेश्वरी नेहरू, कमला देवी चट्टोपाध्याय, हंसा मेहता आदि।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुसलमान स्त्रियों में भी चेतना के अंश दिखने लगे थे। 1905 में अलीगढ़ में अतिया बेगम द्वारा 'मुस्लिम लेडीज कांफ्रेंस' का गठन किया गया। 1914 में मुस्लिम महिलाओं में चेतना का संचार करने के लिए भोपाल की बेगम ने अलीगढ़ में 'आल इण्डिया मुस्लिम लेडीज कांफ्रेंस' की स्थापना की। ये संगठन पर्दा प्रथा, बहु विवाह का विरोध कर रहे थे व स्त्री शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए प्रयासरत थे।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों में स्त्री शिक्षा के प्रयास मूर्त रूप लेने लगे। सरकार द्वारा भी स्त्री शिक्षा के प्रचार के प्रयास किये जाने लगे थे। सम्पूर्ण भारत की तरह उत्तर प्रदेश मे भी स्त्री शिक्षा की स्थिति अत्यधिक दयनीय थी। 1911 में उत्तर प्रदेश की मात्र 0.56 प्रतिशत स्त्रियाँ ही शिक्षित थीं, अर्थात् उत्तर प्रदेश की सम्पूर्ण स्त्री आबादी का 99.44 प्रतिशत पूर्ण रूप से अशिक्षित था। फिर भी बीसवीं सदी के प्रथम दो दशकों में नारी के सामाजिक जीवन की विषमताओं को दूर करने के लिए जो भी प्रयत्न हुए उनमें स्त्री शिक्षा सबसे महत्वपूर्ण था। रूढ़िवादी वर्ग स्त्री शिक्षा का विरोध करता रहा और सुधारवादी भी अपने प्रयासों मे सक्रिय रहे। अतः शनैः-शनैः नारी शिक्षा की योजनायें सार्थक और व्यापक होती चली गईं।

उत्तर प्रदेश में नारी की चेतना के विकास में पत्र-पत्रिकाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान था। श्रीमती रामेश्वरी नेहरू द्वारा प्रकाशित 'स्त्री दर्पण' ऐसी पहली पत्रिका थी। उत्तर प्रदेश से प्रकाशित होने वाली

अन्य महत्वपूर्ण पत्रिकायें थीं—'चाँद', 'सरस्वती', 'हंस', 'विशाल भारत', 'ज्योति', 'मर्यादा', 'कमला', 'गृहलक्ष्मी' आदि। इन पत्रिकाओं ने महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक स्थिति से समाज को परिचित कराया और पर्दा, बहु विवाह, बाल विवाह, दहेज, अनमेल विवाह आदि के दुष्प्रभावाओं को समाज के समक्ष प्रस्तुत किया व स्त्री शिक्षा, विधवा पुनर्विवाह आदि के पक्ष मे वातावरण तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

बीसवीं सदी का पूर्वार्द्ध स्वतन्त्रता की संघर्ष-कथा है। पूरा देश राष्ट्रीय भावना से आन्दोलित था। भारत के विभिन्न जाति, धर्म और सम्प्रदाय के लोगों ने एक होकर विदेशी शासन से मुक्त होने का प्रयास किया और नारी ने अपने सम्पूर्ण प्राण-प्रवेग से साथ देकर, अपने समर्थ सहयोगी होने का परिचय दिया। बीसवीं सदी के तीन दशकों (1919-1947) में महिलाओं की चेतना अभूतपूर्व रूप से इतिहास की अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना के रूप में स्वीकार की जाती है। उत्तर प्रदेश की महिलाओं ने भी स्वतन्त्रता आन्दोलन में बढ-चढ कर हिस्सा लिया। गाँधी जी के राजनीतिक मंच पर प्रवेश ने, न केवल राष्ट्रीय आन्दोलन को गति प्रदान की, बल्कि उन्होंने वह प्रेरणा और स्फूर्ति भी प्रदान की, जिससे महिलाओं को राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने का पूरा प्रोत्साहन मिला। उत्तर प्रदेश की नारियों की स्वाधीनता आन्दोलन में व्यापक भागीदारी उसकी पीड़ा, युग व्यापी शोषण और अशिक्षा को देखते हुए अकल्पनीय था। अधिकाधिक संख्या में राजनीतिक जन-आंदोलन में भाग लेती हुई, शराब की दुकानों पर धरना देती हुई, प्रदर्शनों व हड़तालों में मार्च करती हुई, जेल जाती हुई, लाठी और

गोलियों का सामना करती हुई, कांफ्रेंसों में भाग लेती हुई स्त्रियों का दृश्य इतिहास में अभूतपूर्व था।

महात्मा गाँधी रूढियों और बन्धनों में जकडी भारतीय नारी की स्थिति से परिचित थे, अतः उन्होंने महिलाओं के लिए कार्यक्रम के उस अंग पर बल दिया जो महिलाओ की प्रकृति के अनुकूल था, जिसमें महिलायें घर से निकले बिना भी सहयोग दे सकती थीं। उन्होंने स्वदेशी के कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए महिलाओं को विशेष रूप से उपयुक्त माना। गाँधी जी की जोरदार वाणी ने, खादी पहनना और चरखा कातना, महिलाओं का कर्तव्य बना दिया।

आन्दोलन के पहले चरण में महिलाओं द्वारा सभाएं करने या जुलूस निकालने के उदाहरण कम ही मिलते हैं, फिर भी अनेक अग्रणी महिलाओं ने जगह-जगह सभाएं कीं और प्रदर्शनों का आयोजन किया। वाह्य क्षेत्र में कार्य करने वाली महिलायें या तो संभ्रान्त परिवारों की थीं या उन परिवारों की थीं, जिनके पुरुष-सदस्य आन्दोलन में भाग ले रहे थे। वाह्य क्षेत्र में कार्य करने वाली महिलाओं की संख्या अधिक नहीं थी, फिर भी जो महिलायें कार्यक्षेत्र में आगे आयीं, उन्होंने अन्य महिलाओं को प्रोत्साहित किया। जो महिलायें सामाजिक प्रतिबन्धों या अन्य कारणों से बाहर निकलने में असमर्थ थीं, वे उन सब कार्यों में सहयोग दे रही थीं, जो घर में रहकर किये जा सकते थे।

असहयोग आन्दोलन, भारत की स्वतन्त्रता का आन्दोलन ही नहीं था, वरन् महिलाओं के लिए स्वयं अपनी मुक्ति का आन्दोलन था। स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्रथम चरण में महत्वपूर्ण तथ्य यह नहीं है कि महिलाओं का योगदान कम रहा, बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि योगदान

रहा। धीरे-धीरे समाज के स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण में और सामाजिक-राजनीतिक धरातल पर उसकी स्थिति में परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे। स्त्रियाँ अपने व्यापक दायित्व व भूमिका के प्रति जाग्रत होने लगी थीं। 1925 में पुरुष प्रधान समाज में काग्रेस के अध्यक्ष पद पर सरोजिनी नायडू के निर्वाचन ने उत्तर प्रदेश की महिलाओं में एक नई स्फूर्ति का बीजारोपण किया। इसी दशक में उत्तर प्रदेश की महिलाओं को सर्वसम्मति से मताधिकार प्राप्त हुआ। यह घटना विश्व इतिहास की युगान्तरकारी घटना स्वीकार की गई, क्योंकि नारी को मताधिकार प्राप्त करने के क्षेत्र में, सर्वसम्मति का विश्व में यह पहला उदाहरण था।

स्त्रियों में राजनीतिक-सामाजिक जागरुकता का संचार होने का यह तात्पर्य नहीं कि समाज में उनकी वास्तविक स्थिति में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन आ गया था। वस्तुतः समाज में उनका स्थान अभी दोयम दर्जे का बना हुआ था। एक ओर समाज में नारी की दयनीय स्थिति और दूसरी ओर नारी के उत्थान के प्रति जागरुकता जैसे परस्पर अन्तर्विरोधी तत्व समाज में व्याप्त हो गये थे। उत्तर प्रदेश में विधवाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए विभिन्न स्थानों पर विधवाश्रमों की स्थापना होने लगी। पत्र-पत्रिकाओं में सुधार कार्यक्रमों की चर्चा भी होने लगी। विधवा विवाह को सीमित रूप से ही सही, स्वीकृति मिलने लगी थी। गाँधी जी के सुधारवादी उदार विचारों ने भी तत्कालीन समाज पर सकारात्मक प्रभाव डाला।

1930 में विधवाओं की बढ़ती संख्या से आन्दोलित होकर राय साहब हर विलास शारदा का 'बाल-विवाह बिल' पास हुआ। परिवर्तन विरोधी वर्गों ने इस कानून का बडा कड़ा विरोध किया।

वास्तविक कार्यवाही में यह अभीष्ट फलदायक नहीं हो पाया और बाल–विवाह की प्रथा अपनी सम्पूर्ण विकरालता के साथ विद्यमान रही।

1930 के बाद उत्तर प्रदेश की महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन परिलक्षित होने लगा। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दूसरे चरण में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान भारी संख्या में महिलाये घरों की सुरक्षित सीमा को लाँघ कर सडकों पर निकल पडीं। उसमें केवल मुट्ठी भर शिक्षित, संभ्रान्त परिवारों की ही नहीं अपितु सामान्य परिवारों की रूढ़िवादिता को भेदती हुई महिलायें भी थीं। गाँधी जी के आह्वान पर सैकडों स्त्रियाँ घर की चहारदीवारी और परम्परागत पर्दे से बाहर निकल आयीं और उन्होंने पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य किया। उत्तर प्रदेश में विभिन्न जिलों में महिलाओ ने जगह–जगह सभाओं का आयोजन किया और बड़ी संख्या में महिलाओं से आन्दोलन में भाग लेने की अपील की। प्रदेश के बड़े शहरों में ही नहीं छोटे–छोटे शहरों में भी अनेक स्थानों पर सभाओं का आयोजन हुआ। जुलूसों और सभाओं पर प्रतिबन्ध के बावजूद दण्ड की परवाह न करते हुए महिलाओं ने आन्दोलन में भाग लिया। कई बार जुलूसों पर लाठी चार्ज भी किया गया और महिलाओं को चोटें भी आईं। उत्तर प्रदेश की झुलसाने वाली लू, धूप और वर्षा में महिलाओं ने विदेशी वस्त्रों और शराब की दुकानों पर धरना दिया। आन्दोलन में भाग लेने के कारण अनेक महिलाओं को कुछ हफ्तों से लेकर एक वर्ष तक कठोर कैद की सजा मिली। कुछ महिलायें अपने बच्चों को लेकर भी जेल गईं। साथ ही महिलाओं ने जुर्माने का भुगतान न कर अतिरिक्त सजा भुगतना भी स्वीकार किया।

इस आन्दोलन की विशेषता यह रही कि इसमें केवल उच्च वर्गीय या समृद्ध परिवारों की महिलायें ही आगे नहीं आयीं, बल्कि मध्यम वर्गीय परिवारों की शिक्षित-अशिक्षित, ग्रामीण महिलायें भी आगे आयीं। उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिलों की अग्रणी महिलाओं; श्रीमती स्वरूप रानी नेहरू, श्रीमती कमला नेहरू, श्रीमती उमा नेहरू, श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित, श्रीमती उर्मिला शास्त्री, श्रीमती प्रकाशवती सूद, श्रीमती विद्यावती कंसल, श्रीमती पार्वती देवी, पूर्णिमा बनर्जी, श्रीमती मुकुन्द मालवीय, श्रीमती सुखदेवी पालीवाल, श्रीमती विद्यावती राठौर, श्रीमती स्वरूप रानी रोहतगी आदि ने महिलाओंको सगठित करने और आन्दोलन को गति प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

राष्ट्रीय भावना के साथ-साथ महिलाओं मे राजनीतिक चेतना भी आ गयी थी और वे अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति सजग हो गई थीं। सन् 1935 के अधिनियम द्वारा महिलाओं को अपेक्षाकृत विस्तृत आधार पर मताधिकार प्राप्त हुए। इस अधिनियम के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश विधान सभा में महिलाओं के लिए 6 स्थान सुरक्षित किये गये। इसके अतिरिक्त महिलायें सामान्य निर्वाचन क्षेत्र से भी खड़ी हो सकती थीं। 1937 में सम्पन्न हुए चुनावों में 13 महिलाये विधान सभा के लिए विजयी हुईं। विधान मण्डल के लिए निर्वाचित महिलायें केवल मूकदर्शी शोभा की वस्तु बनकर नहीं बैठी रहीं, वरन् उन्होंने सदन की कार्यवाहियों में सक्रिय रूप से भाग लिया और उत्तर प्रदेश की महिलाओं का प्रतिनिधित्व किया।

उत्तर प्रदेश में स्त्रियों की शिक्षा का प्रश्न 1930 के बाद वाद-विवाद की सीमा का अतिक्रमण करके व्यावहारिक क्षेत्र में प्रवेश

करने लगा था। अभिभावक भी विपरीत न होकर स्त्री शिक्षा के लिए मित्रवत् होने लगे थे। स्त्रियों के राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने व स्त्री शिक्षा के कारण पर्दे में भी कमी आई। ऐसी स्थिति में स्त्रियों के विकास का मार्ग खुलने लगा। कुछ लड़कियाँ उच्च शिक्षा भी प्राप्त करने लगी थीं, जिससे स्त्रियों के जीविकोपार्जन का मार्ग खुल गया और वे आर्थिक आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर होने लगीं। स्त्रियाँ मुख्य रूप से अध्यापन व मेडिकल क्षेत्र में ही अधिक प्रवेश कर रही थीं।

इस सन्दर्भ में साहित्य की भूमिका भी विशेष महत्वपूर्ण थी। साहित्य ने जीवन के किसी भी पक्ष को अछूता नहीं छोडा। नारी जागरण की दृष्टि से तो साहित्य उसके स्वत्व और व्यथा का समर्थ व्याख्याकार ही रहा है। कथाकारो की आँखों में भारत माता की परवशता पर ही आँसू नहीं आए हैं, विवश नारी के बन्धनों पर भी आए हैं। बंकिम, रवीन्द्र, शरत्, मैथिलीशरण, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द आदि ने भारतीय नारी की महिमा की परिधि में, उसकी युगान्तरकारी दीर्घ मर्म व्यथा को वाणी दी है। उत्तर प्रदेश में साहित्य के क्षेत्र में भी अनेक महिलायें सामने आईं—जिनमें सरोजिनी नायडू, महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान, तोरण देवी, रशीद जहाँ, इस्मत चुगताई, हिजा़ब इम्तियाज़ अली आदि प्रमुख थीं।

नारी की सदियों पुरानी दासता का एक महत्वपूर्ण कारण उसकी सदियों पुरानी आर्थिक अशक्तता थी। उसके सम्पत्तिगत अधिकार भी नाममात्र थे। 1937 में सी.डी. देशमुख जैसे सुधारकों के सहयोग से 'हिन्दू महिला सम्पत्ति अधिनियम' पारित हुआ। 1938 में उत्तर प्रदेश विधान सभा में श्री वंश गोपाल ने दहेज प्रथा को रोकने के लिए

बिल प्रस्तुत किया। 1939 में मुस्लिम महिलाओं की तलाक के सम्बन्ध में बदतर स्थिति को सुधारने के लिए 'मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम' पारित हुआ, जिसके द्वारा पत्नी को भी तलाक देने सम्बन्धी कुछ अधिकार प्रदान किये गये।

सन् 1940 के व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन में भी उत्तर प्रदेश की महिलाओं ने पिछले आन्दोलन की तरह उत्साह से भाग लिया। पिछले आन्दोलन में जो महिलायें आगे आई थीं उनके अलावा अन्य-अनेक महिलायें भी आगे आयीं। जैसे-पूर्णिमा बनर्जी, सुचेता कृपलानी, डा. बोलर थंगम्मा, शिवराजवती नेहरू, मोहिनी देवी, प्रभा दीक्षित, शकुन्तला श्रीवास्तव, साधना श्रीवास्तव आदि। उत्तर प्रदेश की महिलायें अप्रत्यक्ष रूप से क्रान्तिकारियों को भी सहायता देती रहीं।

1942 का 'भारत छोड़ो आन्दोलन' स्वतन्त्रता संग्राम का अंतिम आन्दोलन था। इस आन्दोलन का स्वरूप सरकार की दमनात्मक नीति के कारण हिंसात्मक हो गया था, फिर भी महिलाओं ने जगह-जगह जुलूस निकाले और सभाए कीं। विश्वविद्यालय और स्कूलों की छात्रायें भी पीछे नहीं रहीं। अनेक महिलाओं ने भूमिगत रहकर भी आन्दोलन का नेतृत्व किया। अरुणा आसफ अली, ऊषा मेहता, सुचेता कृपलानी का नाम इनमें मुख्य है।

1946 में सम्पन्न हुए चुनावों में भी उत्तर प्रदेश से अनेक महिलायें निर्वाचित हुईं। इनमें सुश्री पूर्णिमा बनर्जी, श्रीमती विद्यावती राठौर, श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित, श्रीमती प्रकाशवती सूद, श्रीमती सज्जन देवी मन्होत, श्रीमती लक्ष्मी देवी, बेगम अमजादी बानों, बेगम अब्दुल वाजिद थीं। उत्तर प्रदेश की महिलाओं की राजनीतिक उपलब्धियों को

देखते हुए ही संविधान सभा के लिए विभिन्न प्रान्तो में से 15 महिलाओं में से 5 केवल उत्तर प्रदेश से ही निर्वाचित की गईं, जिनमें श्रीमती सुचेता कृपलानी, श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित, सुश्री पूर्णिमा बनर्जी, श्रीमती कमला चौधरी एवं बेगम एजाज रसूल भी थीं। उत्तर प्रदेश की महिलाओं ने अनेक अन्तर्राष्ट्रीय बैठकों में भी भाग लेकर उत्तर प्रदेश की महिलाओं के सम्मान में वृद्धि की और उन्हें गौरवान्वित किया।

वस्तुतः इन ऊँचे दीपाधारों के नीचे विस्तृत और अंधेरी छायाएँ भी डोलती रहीं, जो उत्तर प्रदेश की बहुसख्यक, अशिक्षित तथा रूढ़ियों की बन्दिनी नारियों की थीं। औसत नारी अब भी सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से पिछड़ी हुई थी। वह अपने हितों, अधिकारों से अनभिज्ञ थी। जागृति के इस ऊषाकाल में भी अन्धकार से आच्छादित थी व अनेक प्रकार के पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक तथा शारीरिक-मानसिक शोषण का शिकार थी। स्वतन्त्रता, समानता, लैंगिक न्याय, शिक्षा जैसे विषय पर निराशाजनक स्थिति बनी हुई थी। किन्तु इतना अवश्य था कि विधवा पुनर्विवाह, स्त्रियों के सम्पत्तिगत अधिकार, पर्दा प्रथा की समाप्ति, स्त्री शिक्षा आदि अत्यावश्यक विषयों पर आधार तैयार हो गया था। राजनीतिक व सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी ने महिलाओं के लिए प्रगति के अनेक नए द्वार खोल दिए थे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय तक उत्तर प्रदेश की महिलायें अध्यापन व मेडिकल के दो प्रधान व्यवसायों से इतर अन्य व्यवसायों में भी प्रवेश करने लगी थीं। अब वे वकील, इंजीनियर, पुलिस, प्रशासन,

बैंकों, कम्पनियों में भी कार्य करने लगी थीं। ऐसे बहुत कम क्षेत्र बचे थे जिसमें उन्हें प्रवेश करना शेष था।

1900 से 1947 के कालखण्ड मे उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा के विकास, स्त्रियों की राष्ट्रीय आन्दोलन में भागीदारी, स्त्रियों की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक जागरुकता तथा पर्दा प्रथा में आयी कमी ने स्वतन्त्रता के समय ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी थीं कि स्त्रियों के विकास का मार्ग खुल गया और इसी कारण इस कालखण्ड को 'नारी जागरण का काल' कहा जा सकता है। यह उसी का परिणाम है कि आज सामाजिक जटिलता के बावजूद जीवन के हर पहलू में नारी अपना स्थान बना चुकी है। चाहे वह शिक्षा का क्षेत्र हो या विज्ञान का, खेलकूद का, राजनीति का, प्रशासन का या साहित्य का। अतः 1947 के बाद से जो युग प्रारम्भ हुआ उसे 'नारी प्रगति का काल' कहा जा सकता है।

नारी की बहुमुखी प्रगति एक सपना है, बहुत महत्वाकाक्षी सपना। सदियों के पिछड़ेपन के अन्धकार से निकलकर दीप्यमान प्रकाश पुंज तक पहुँच जाने की यह एक लम्बी यात्रा है। लेकिन कष्टकर परिस्थितियों के बावजूद अपने लक्ष्य को प्राप्त करने की अदम्य आकांक्षा और प्रबल इच्छाशक्ति के साथ नारी ने इस श्रम-साध्य और संघर्षपूर्ण कार्य को पूरा करने का प्रण कर लिया है।

***

परिशिष्ट

परिशिष्ट—'क'

उत्तर प्रदेश की महिलाओं को आंदोलित करने वाले बीसवीं सदी के प्रमुख नारीवादी चिन्तक (1919-1947)

एनी बेसेंट:

स्त्री-शिक्षा, स्त्री समानता की पक्षधर, होमरूल लीग में महिलाओ की भागीदारी को प्रोत्साहित करने वाली सशक्त व्यक्तित्व की महिला; 1917 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्षा बनने से महिलायें अधिक उत्साहित हुईं, थिओसोफिकल सोसाइटी की प्रधान के रूप में नारी जागरण का सराहनीय प्रयास प्रारम्भ किया था, सेन्ट्रल हिन्दू कालेज, बनारस की स्थापना के पश्चात् महिलाओं की शिक्षा के लिए समाज को आन्दोलित करने का सशक्त प्रयास प्रारम्भ किया था, स्वराज्य की स्थापना के लिए महिलाओं की भागीदारी को सम्भाव्य बनाया।

प्रोफेसर कर्वे :

1916 में इंडियन वीमेंस यूनीवर्सिटी की स्थापना की थी, इससे उत्तर प्रदेश की महिलाओं में वे सादर लोकप्रिय बन गये थे, उत्तर प्रदेश की

महिलाओं में वे शिक्षा-प्रचार के अग्रदूत के रूप में चर्चित रहे, स्त्री-शिक्षा के प्रबल समर्थक, स्त्रियों की जागरुकता तथा समाज में महिलाओं की प्रभावी भूमिका के लिए आजीवन प्रयासरत रहे।

काजी नजरूल इस्लाम :

इस बंगाली साहित्यकार का उत्तर प्रदेश की नगरीय महिलाओं पर अत्यधिक प्रभाव रहा; स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की क्रान्तिकारी पुनर्रचना के सशक्त कवि; "मैं समानता के गीत गाता हूँ, मेरी दृष्टि में पुरुष और स्त्री में कोई अन्तर नहीं है।" आजीवन वे पीडित नारियो के लिए अत्युत्तम संवेदनशीलता और गहरी सहानुभूति प्रकट करते रहे; बाल-विवाह निरोधक कानून का समर्थन किया; शारदा बिल का विरोध कर रहे रूढिवादी हिन्दुओं पर व्यंग्य कवितायें लिखीं; स्त्री-चेतना के प्रमुख साहित्यकार के रूप में चर्चित।

कमला देवी चट्टोपाध्याय :

इस जुझारू राजनीतिज्ञा का प्रभाव उत्तर प्रदेश की महिलाओं पर सर्वाधिक रहा; इसने स्त्रियों की समानता के लिए आजीवन संघर्ष किया; महिलाओं में अपने उत्तरदायित्व को समझने की प्रेरक शक्ति

का कार्य किया; स्त्रियों की पुरुषों के समान शिक्षा पर बल दिया, स्त्रियों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए रचनात्मक प्रयास किये; स्त्रियों के स्वतंत्र-प्रखर व्यक्तित्व की पक्षधर रहीं।

जयशंकर प्रसाद :

हिन्दी साहितय के छायावादी कवि, नारी रूप के विश्वसनीय जानकार, उत्तर प्रदेश की महिलाओं में लोकप्रिय; नारी-शोषण के प्रति क्षोभ व्यक्त करने वाले सशक्त साहित्यकार, विधवा-पुनर्विवाह के पक्षधर; नारी को आदर्श श्रद्धा के रूप में देखा जो रागात्मक वृत्ति की प्रतीक है और मनुष्य को मंगल एवं श्रेय के पथ पर ले जाने वाली है।

जवाहर लाल नेहरू :

महिलाओं की जागरुकता के पक्षधर; पुरुषों की दासता तथा अज्ञानता, अधविश्वासों, रूढ़िवादिता के विरुद्ध स्त्रियों को सघर्ष की प्रेरणा देने वाले सशक्त राजनयिक, राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित किया; स्त्री-पुरुष समानता में विश्वास रखने वाले, स्त्रियों के स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास में सहयोग करने वाले सशक्त राष्ट्र नेता; महिलाओ में सर्वाधिक लोकप्रिय।

दुर्गाबाई देशमुख :

महिलाओं में शिक्षा-प्रसार के लिए आजीवन कार्यरत; प्रमुख समाज सुधारक; रूढिवादी विचारों से मुक्ति के लिए महिलाओं को आंदोलित किया, बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा के विरुद्ध चेतना प्रदान की, महिलाओं को स्वावलम्बी बनाने तथा पुरुषों की दासता से मुक्ति के लिए संघर्षरत रहीं, उत्तर प्रदेश की महिलाओं में नारी-चेतना की प्रखर स्तम्भ के रूप में चर्चित।

प्रेमचन्द :

नारी उत्पीड़न का विस्तृत उल्लेख अपने साहित्य में किया; उनकी धारणा थी कि नारी का सर्वाधिक शोषण सवर्ण समाज में अधिक है क्योंकि वहाँ नारी आर्थिक दृष्टि से पुरुष पर आश्रित होती है; नारी को आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर बनाने के पक्षधर थे; नारी को पुरुषों की दासता के विरुद्ध उठ खड़े होने की सशक्त प्रेरणा दी; विधवा-पुनर्विवाह के समर्थक; स्त्री-शिक्षा के पक्षधर; अनमेल विवाहों के घोर विरोधी; बाल-विवाह के विरुद्ध समाज को आंदोलित करने वाले; पर्दा-प्रथा के लिए महिलाओं को स्वतः विरोध करने की प्रेरणा दी; स्त्री-पुरुष की

समानता के श्रेष्ठ साहित्यकार; नारी की गरिमा के चितेरे; प्रेमचन्द ने प्रतिपादित किया कि कोई भी व्यक्ति घृणा का पात्र नहीं; वेश्या भी घृणा की पात्र नहीं हो सकती, वे वेश्याओं को वेश्यावृत्ति से मुक्ति दिलाने के विषय के सशक्त रचनाकार थे; वास्तव में प्रेमचन्द ने महिलाओं की प्रत्येक पीडा को गहराई से समझा है और उसे दूर करने के लिए महिलाओं को चेतना प्रदान की है। वे इस काल के प्रमुख नारीवादी चिन्तक स्वीकार किये जा सकते हैं।

महारानी बड़ौदा (चिमनबाई गायकवाड़) :

उत्तर-प्रदेश की महिलाओं में राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान सर्वाधिक चर्चित रहीं; उन्हीं की सतत् चेष्टा से भारत का एक रजवाड़ा बड़ौदा, बाल-विवाह विरोधी और लड़कियों के लिए अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को कानून बनाने वाला प्रथम राज्य बना था; स्त्रियों की समानता, प्रगति की पक्षधर थीं, स्त्रियों को अपनी मुक्ति के लिए तथा राष्ट्र की मुक्ति के लिए आन्दोलित किया; आल इण्डिया वीमेंस कान्फ्रेंस की प्रथम अध्यक्ष रही थीं; वे सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रही थीं; देश की राष्ट्रीय संघर्ष के दौरान प्रमुख

नारीवादी चिन्तक के रूप में चर्चित रही थीं; महिलाओं के स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास हेतु व्यग्र नारीवादी कार्यकर्ती के रूप में लोकप्रिय।

मार्गरिट कजिंस :

प्रमुख महिला सगठन 'आल इण्डिया वीमेंस कान्फ्रेंस' स्थापित किया, महिला आन्दोलन को संगठित करके राष्ट्रीय धारा से सम्बद्ध किया; महिलाओं की पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक स्थिति सुधारने का प्रयत्न किया; स्त्री-शिक्षा के लिए आजीवन प्रयत्न किये; महिलाओं के लिए एक दबाव-समूह का गठन करके उनकी चेतना को विकसित किया तथा प्रगतिशील बनाने का प्रयास किया। उत्तर प्रदेश की मध्यम वर्ग की महिलाओ में अत्यधिक लोकप्रिय।

मैथिलीशरण गुप्त :

मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी-भावना की तीव्र गूंज है; वे नारी को परिवार के केन्द्र में स्थापित करने के लिए उत्साही कवि हैं; उनकी कल्पना शक्ति तथा नवीन चेतना ने भारतीय नारी-जीवन की पीडा को पहचाना है और उसे अपने काव्य में अभिव्यक्ति दी है; नारी-भावना को पहचानने और उसका चित्रण करने में वे हिन्दी

जगत के बेजोड़ कवि कहे जा सकते हैं; वे नारी को स्वाभिमानी, प्रखर व्यक्तित्व की जागरूक नारी के रूप में प्रतिष्ठापित करने के लिए प्रयत्नशील रहे। उन्होंने अपने काव्यात्मक स्वरों से महिलाओं को चेतना प्रदान की और अपनी समस्याओं से निबटने के लिए स्वतः प्रयास करने के लिए आन्दोलित किया था। वे उत्तर प्रदेश की महिलाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय नारीवादी साहित्यकार थे।

महात्मा गांधी :

महिलाओं की स्थिति का सर्वांगीण अध्ययन कर नारी-चेतना के क्रांतिकारी अग्रदूत, बाल-विवाह का सशक्त विरोध करने वाले मसीहा; विधवा-पुनर्विवाह के समर्थक; पर्दा प्रथा के मुख्य विरोधी; सार्वजनिक जीवन में पुरुषों की भाँति काम करने के लिए स्त्रियों को प्रोत्साहित करने वाले अतिमानव; उनके शब्दों में अहिंसात्मक संघर्ष के लिए स्त्रियाँ पुरुषों से भी अधिक उपयुक्त हैं क्योंकि उनमें दुःख और कष्ट सहन करने की अपार क्षमता है; उनकी दृष्टि में स्नेह-प्रेम, सद्भावना स्त्रियों में पुरुषों से कहींअधिक होती है; वे दहेज-प्रथा के प्रबल विरोधी थे; स्त्रियों को राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिए उन्हें दृढ़ता से आन्दोलित किया; गाँधी जी की प्रेरणा

का यह परिणाम रहा कि महिलाओ ने स्वतत्रता सघर्ष में अत्यधिक भागीदारी की; उन्हीं की सतत् चेष्टा का यह परिणाम रहा कि नारी–समुदाय राष्ट्रीय धारा में सन्निहित हुआ, स्त्रियों की राष्ट्रीय छवि स्थापित हुई; गाँधी जी ने स्त्रियो को नैतिक शक्ति के रूप में तथा पुरुषों के साथ आर्थिक शक्ति के रूप में सवर्धन के लिए आन्दोलित किया था; समाज में महिलाओं को सम्मानित स्थान दिलाने तथा उन्हें आत्मनिर्भर बनाने में उनका अप्रतिम योगदान रहा था। उन्हीं के प्रयासों से राष्ट्रीय आन्दोलन न केवल ब्रिटेन की दासता से मुक्ति का अभियान बना था, अपितु नारी–स्वतन्त्रता का इतिहास भी बन गया था; गाँधी जी के असहयोग तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन की महत्वपूर्ण शक्ति स्त्रियाँ रही हैं; गाँधी जी की अहिसात्मक राजनीतिक युद्ध–पद्धति की प्रकृति नारी के लिए उपयुक्त थी, अत· गाँधी जी के नेतृत्व में पहली बार स्त्रियाँ विशाल समूह में घर की सीमाये लाघकर स्वाधीनता संग्राम में भाग ले सकी थीं; उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में बहिष्कार का मोर्चा नारी–वर्ग को सौंपा था; विदेशी कपड़ों की दुकानों तथा शराब की दुकानों पर धरना (पिकेटिंग) देने का भार स्त्रियों को सौंपा था; उन्होंने नारी के प्रति रूढ़िवादी नैतिक

दृष्टिकोण के लिए पुरुषों की कटु आलोचना की थी; उनका कथन था कि पुरुष को कोई अधिकार नहीं कि वह नारी की पवित्रता का नियन्ता बने, उत्तर प्रदेश की सभी महिलायें (शहरी-ग्रामीण, शिक्षित-अशिक्षित, धनी-निर्धन, उच्च वर्ग-मध्य वर्ग-निम्न वर्ग) गाँधी से प्रभावित रही थीं। वास्तव में वे इस शताब्दी के सर्वाधिक प्रमुख नारीवादी राजनेता, चिन्तक रहे थे; समाज-सुधारक के रूप में तथा नये भारत की कल्पना करने वाले वे महान् नारीवादी लेखक थे।

यशपाल :

यशपाल की दृष्टि में स्वाधीनता, समाज के स्वस्थ विकास की परिचायक है; वे विवाह, सतीत्व, नैतिक सदाचार तथा एकनिष्ठ प्रेम सभी को सामन्तवादी एवं पूजीवादी समाज के सास्कृतिक मूल्य मानते हैं, उनके प्रगतिशील साहित्य में नारी की स्वाधीनता को प्रतिबिम्बित किया गया है; वे अपनी रचनाओं में विवाह का विरोध करते हैं; स्वच्छन्द प्रेम एव अवैध काम सम्बन्धों को मान्यता देते हैं; अवैध सन्तान को भी मान्यता देते हैं। वे विवाह तथा प्रेम को भौतिक मानते हैं; विवाह संस्था के विरोधी लेखकों में यशपाल सर्वोपरि हैं। उत्तर प्रदेश की उच्च-शिक्षा प्राप्त

महिलाओ में वे अधिक लोकप्रिय नारीवादी लेखक के रूप में चर्चित रहे।

रवीन्द्रनाथ टैगोर :

अपने विपुल साहित्य (बगला, अग्रेजी) में स्त्री की एक मानव के रूप में पहचान स्थापित करने वाले महान् कवि, चिन्तक से उत्तर प्रदेश का शिक्षित नारी–समुदाय पूर्णतया प्रभावित रहा है, परिवार तथा समाज में नारी के पृथक व्यक्तित्व की पहचान देने वाले वे प्रसिद्ध सहित्यकार थे; महिलाओं की रूढ़िवादी संस्कारों से मुक्ति के लिए वे आजीवन महिला वर्ग को आन्दोलित करते रहे; महिलाओं के ध्येय के समर्थक रहे; अपने व्यापक साहित्य के माध्यम से 'महिलाओं का प्रश्न' साहसिकता से उठाया, यद्यपि वे महिलाओं के परम्परागत स्त्रैण गुणों के प्रशंसक थे जैसे–सुन्दरता, मातृत्व, धार्मिकता, प्रेम, आकर्षण, सेवा–भाव आदि, परन्तु उनकी बुद्धि स्त्री के जीवन की महत्वपूर्ण कमियों को पहचानने के लिए, उसकी तड़प को पकड पाने में सफल रही थी। इस दौर के वे प्रमुख नारीवादी चिन्तक स्वीकार किये जाते हैं।

वृन्दावन लाल वर्मा :

नारी की उपेक्षा के सतत् विरोधी रहे, अपने औपन्यासिक साहित्य में स्त्रियों को पुरुषों के शोषण से मुक्ति दिलानेकी चेतना उत्पन्न की थी; स्त्रियों को पुरुषों के साथ सार्वजनिक कार्यों में भागीदारी के लिए प्रेरित किया, सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्र मे स्त्री-पुरुष समानता के पक्षधर रहे; वे स्त्री के प्रेम करने के अधिकार के समर्थक थे; विधवा-पुनर्विवाह के पक्षधर थे; शिक्षित महिला-समुदाय में नारीवादी चिन्तक के रूप में चर्चित।

विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक :

स्त्री-शिक्षा तथा स्त्री-पुरुष समानता के प्रबल समर्थक; समाज में नारी की प्रतिष्ठा स्थापित करने के लिए प्रयासरत रहे; पर्दा-प्रथा, बालविवाह के प्रबल विरोधी रहे; विधवा-पुनर्विवाह के समर्थक थे; स्त्री की जागरुकता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे।

शरतचन्द्र चटर्जी :

अपने कथा साहित्य, उपन्यासों में अपेक्षित स्त्रियों के तादात्म्य की भावना के कारण और दूसरी ओर

कुशल तथा प्रबुद्ध स्त्रियों की प्रशसा के कारण उल्लेखनीय रहे; उनकी कृतियों में प्रत्येक स्त्री एक विशिष्ट व्यक्ति के रूप में दिखाई देती है; समाज में महिलाओ के दमन की तीखी आलोचना के सशक्त बंगला साहित्यकार से उत्तर प्रदेश की महिलायें अधिक प्रभावित रही हैं; वे महिलाओं के ध्येय के समर्थक स्वीकार किये जाते हैं; उन्होंने नारी-शोषण के विरुद्ध जन-मानस को आंदोलित किया था, उनकी प्रमुख कृति 'नारीर मूल्य', उन्हें बीसवीं सदी के आरम्भिक वर्षों के सदर्भ में एक नारीवादी चिन्तक के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

सरलादेवी चौधरानी :

असंगठित नारीत्व को संगठित करने के उद्देश्य से अखिल भारतीय स्तर का अग्रगामी महिला संगठन 'भारत स्त्री महामडल' की स्थापना की; नारी शक्ति को व्यक्तिगत स्तर पर जागृत करने का प्रयत्न किया; प्रबुद्ध और कार्यकर्ती महिलाओ के बीच सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न, स्त्रियों में शिक्षा के प्रचार का प्रयास; पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह के विरुद्ध नारी समुदाय को आंदोलित किया। इस नारीवादी चिन्तक ने महिलाओं के पति चुनने, अपनी इच्छानुसार मातृत्व की अवस्था में प्रवेश करने तथा तलाक मांगने के अधिकार के लिए

महिलाओं को आंदोलित करने का प्रयास किया था। इससे उत्तर प्रदेश की राजनीतिक, सामाजिक कार्यकर्तियों (जागरूक महिलाओं) को असीम प्रेरणा और साहस प्राप्त हुआ था। इस नारीवादी चिन्तक ने महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने तथा राष्ट्रीय आन्दोलन में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करने की सशक्त प्रेरणा महिला–समुदाय को प्रदान की थी।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' :

निराला जी के सभी उपन्यासों के शीर्षक नारी–पात्रों के नाम पर हुए हैं, उनके नारी–पात्र सुदृढ़ व्यक्तित्व के परिचायक हैं; वे नारी–शिक्षा के प्रबल समर्थ रहे; रूढिवादी सामाजिक बन्धनों को तोड़ने के लिए नारी–समुदाय को आंदोलित करने वाले प्रमुख नारीवादी साहित्यकार के रूप में प्रदेश में चर्चित; उन्होंने नारियों में आधुनिक प्रगतिशील नारी बनने की चेतना का स्वर मुखरित किया है।

श्रीमती सरोजिनी नायडू :

उत्तर प्रदेश की महिलाओ में सर्वाधिक लोकप्रिय; स्त्री–चेतना की कर्मठ राजनीतिज्ञा; स्त्री–शिक्षा की मुख्य समर्थक; विधवा–पुनर्विवाह की पक्षधर; पर्दा–प्रथा, बाल विवाह की विरोधी, दहेज–प्रथा के

उन्मूलन हेतु समाज को आन्दोलित किया; स्त्री-पुरुष समानता के लिए आजीवन प्रयासरत रही थीं; 1925 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्षा बनने पर महिलाओं को सार्वजनिक रूप से कार्य करने तथा राष्ट्रीय आन्दोलन में जुड़ने के लिए प्रोत्साहित किया, महिलाओ को राष्ट्रीय धारा में समाहित करने का प्रयत्न किया; उन्हीं की प्रेरणा से महिलाओ की भागीदारी प्रत्येक आंदोलन (सामाजिक अथवा राष्ट्रीय संघर्ष) में बढ़ी थी; महिलाओं का उत्थान इस प्रमुख राजनीतिज्ञा का ध्येय बना रहा, भारत की महान् नारीवादी चिन्तक-राजनीतिज्ञा के रूप में चर्चित रहीं।

श्रीमती हीराबाई :

ब्रिटिश सरकार के समक्ष 1919 में नारी के लिए राजनीतिक अधिकारो की माँग प्रस्तुत करने वाली प्रमुख महिला; स्त्री-पुरुष समानता की पक्षधर; सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध महिलाओं को आन्दोलित करने वाली सशक्त महिला; पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह की प्रमुख विरोधी रहीं; विधवा-पुनर्विवाह के लिए समाज को आदोलित किया; महिलाओ को प्रगतिशील बनाने के लिए स्त्री-शिक्षा पर बल दिया।

श्रीमती अरुणा आसफ अली :

उत्तर प्रदेश की महिलाओ में चर्चित स्वतंत्रता सेनानी; स्त्री-पुरुष समानता की पक्षधर; स्त्री-शिक्षा की प्रमुख समर्थक, बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, दहेज-प्रथा की मुख्य विरोधी रहीं; विधवा पुनर्विवाह की पक्षधर रहीं, सामाजिक रूढ़िवादी मान्यताओं के विरुद्ध नारी-समुदाय को आंदोलित किया, राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य संघर्ष में महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित किया। वे स्त्री-स्वातन्त्र्य की पक्षधर रहीं; प्रसिद्ध कर्मठ राजनीतिज्ञा, रचनात्मक कार्यों द्वारा महिलाओं की सार्थकता को सार्वजनिक जीवन में सुनिश्चित करती रही थीं।

हरविलास शारदा :

हिंदू विडोज प्रापर्टी बिल प्रस्तुत करके नारी के अधिकारों का दृढता के साथ समर्थन किया, वे नारी-जागरण के सशक्त समर्थक थे। इस काल के प्रसिद्ध नारीवादी चिन्तक के रूप में उत्तर प्रदेश की महिलाओं में लोकप्रिय तथा चर्चित रहे।

सुभाष चन्द्र बोस :

महिलाओं के प्रति रूढिवादी मान्यताओं के प्रबल विरोधी; स्त्री-पुरुष समानता के पक्षधर; महिलाओ को सार्वजनिक जीवन में आगे बढने के लिए प्रेरित किया; आजाद हिन्द फौज में 'रानी झाँसी रेजिमेंट' के नाम से स्त्री सैनिकों का एक दल गठित करके राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य सघर्ष में महिलाओं की भागीदारी को महत्व प्रदान किया; भारतके प्रमुख नारीवादी चिन्तक के रूप में चर्चित सुभाष चन्द्र बोस सर्वाधिक लोकप्रिय रहे हैं।

***

परिशिष्ट–'ख'
उत्तर प्रदेश की कुछ प्रमुख महिलायें

अमतुस्सलाम :

अलीगढ़ के परम्परागत मुस्लिम परिवार में जन्म लेने वाली स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी अमतुस्सलाम ने गाँधी जी से प्रभावित होकर 1922 में राजनीतिक गतिविधियो में भाग लेना प्रारम्भ किया। उन्होंने खादी को अपनाया और खादी के प्रचार–प्रसार के लिए निरन्तर प्रयास किया। वे एक कट्टर गाँधीवादी थीं और उन्होंने अपने जीवन का कुछ समय साबरमती आश्रम में व्यतीत किया। आश्रम में उन्होंने सूत कातना और चर्खा चलाना सीखा। उन्होंने हिन्दू मुस्लिम एकता को बनाए रखने के लिए निरन्तर प्रयास किया। 1947 के साम्प्रदायिक दंगों को रोकने के लिए उन्होंने नोआखाली में गाँधी जी के साथ 21 दिन का उपवास भी रखा। उन्होंने रिफ्यूजी कैंपों में भी राहत कार्यों में सक्रिय रूप से भाग लिया। 1960 में अलीगढ के दगा प्रभावित क्षेत्रो में शांति स्थापना के लिए कार्य किया। 1962 में

चीनी आक्रमण के बाद भी हो रहे राहत कार्यों के लिए अपनी सेवायें प्रस्तुत कीं।

बी अम्मान (अबादी बानों बेगम):

प्रसिद्ध खिलाफत नेता मुहम्मद अली और शौकत अली की माँ अबादी बानो बेगम 'बी अम्मान' के नाम से अधिक प्रसिद्ध थीं। खिलाफत, स्वराज्य व हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए उनके द्वारा किये गये प्रयास बहुमूल्य हैं। इस अभिजात वर्गीय विधवा ने अपने जीवन की साध्य-बेला में राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लिया। उनका सार्वजनिक जीवन 1913 में 'अंजुमन-ए-खुद्दम-ए-काबा' सगठन की बैठकों में भाग लेने से प्रारम्भ हुआ। इन्होंने 1917 में 'मुस्लिम-लीग' की वार्षिक बैठक में अपने पुत्र मुहम्मद अली की अनुपस्थिति में उनकी तरफ से भाषण दिया। यद्यपि यह भाषण उन्होंने पर्दे के पीछे से दिया था तथापि यह पहला अवसर था जब किसी मुस्लिम महिला ने किसी राजनीतिक सभा को सम्बोधित किया था। 1921 में बी अम्मान ने पर्दा त्याग कर खिलाफत आन्दोलन के विषय पर पूरे देश का दौरा किया और सभायें करके खादी और हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल

दिया। 1924 में अपनी मृत्यु तक वे राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय रहीं।

चन्द्रावती लखनपाल :

इनका जन्म दिसम्बर 1904 बिजनौर में हुआ। उन्होंने 1926 में स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की और बाद में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। उनका विवाह श्री सत्यार्थ सिद्धार्थलंकर से हुआ। उन्होंने सविनय अवज्ञा आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। वे मुख्य रूप से शिक्षाविद् थीं। वे महादेवी इटर कालेज, देहरादून की प्रधानाचार्या और लडकियों के गुरुकुल की आचार्या रहीं। वे एक लेखिका और समाज सेविका भी थीं। 1952 में वे उत्तर प्रदेश विधान-सभा की सदस्य निर्वाचित हुईं। उनका निधन 1969 में बम्बई में हुआ।

दुर्गादेवी वोहरा :

1907 में जन्मी दुर्गा देवी का विवाह प्रसिद्ध क्रांतिकारी भगवती चरण वोहरा से हुआ। भगवती चरण वोहरा के क्रातिकारी साथी भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव, चन्द्रशेखर आजाद आदि उन्हें भाभी कहते थे। अत· वे 'दुर्गा भाभी' के नाम से प्रसिद्ध हुईं। सौन्डर्स की हत्या के बाद लाहौर

पुलिस इन क्रान्तिकारियो के पीछे थी। अतः पुलिस को चकमा देकर भगतसिह व राजगुरु को कलकत्ता सुरक्षित पहुँचाने के लिए भगत सिंह व दुर्गाभाभी ने यूरोपीय पति-पत्नी का व राजगुरु ने उनके नौकर का नकलीवेश धारण किया। अपने पति की मृत्यु के बाद दुर्गा भाभी इलाहाबाद आ गईं और बनारस, कानपुर, इलाहाबाद के क्रातिकारियों की निरन्तर सहायता करती रहीं। इन्होंने स्वयं भी बम्बई में एक अंग्रेज अफसर की कार पर गोली चलाई थी। 1999 में गाजियाबाद में इनकी मृत्यु हुई।

कमला नेहरू :

1899 में जन्मी कमला नेहरू का विवाह 1916 में पंडित जवाहर लाल नेहरू से हुआ। 1921 के बाद इन्होंने विदेशी वस्त्रों को त्यागकर अन्य परिवार जनों के साथ खादी को अपना लिया। उन्होंने असहयोग आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाई। उन्होंने जुलूसों का नेतृत्व किया, विदेशी वस्त्रों की होली जलाई और सार्वजनिक सभाओं में भाषण दिए। उन्होंने आन्दोलन में सामान्य महिलाओं को शामिल करने व कांग्रेस के लिए स्वयं सेविकायें तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1930 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के

दौरान उन्होंने अनेक स्थानों पर कानून को तोड़ा। अपने ओजस्वी भाषणों के द्वारा वे उत्तर प्रदेश की महिलाओं के लिए प्रेरणा स्रोत बन गईं। वे उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी की सदस्य व इलाहाबाद जिला काग्रेस कमेटी की अध्यक्ष भी रहीं। 28 फरवरी, 1936 को जेनेवा में 37 वर्ष की अवस्था में उनका निधन हो गया।

कैप्टन लक्ष्मी सहगल :

प्रसिद्ध राजनीतिक कार्यकर्ता अम्मू स्वामीनाथन की पुत्री लक्ष्मी स्वामीनाथन मूल रूप से मद्रास से सम्बन्धित थीं। उन्होंने 1936 में मद्रास से एम. बी.बी.एस. की डिग्री प्राप्त की और आगे शिक्षा प्राप्त करने के लिए सिगापुर चली गईं। यहीं पर इन्होंने आई.एन.ए. की गतिविधियों में भाग लेना प्रारम्भ किया। 1943 में नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने रानी झाँसी रेजिमेंट का गठन किया और लक्ष्मी स्वामीनाथन इस रेजीमेन्ट की कमान्डर बनीं। उन्होंने युद्ध के लिए आवश्यक सभी प्रकार का प्रशिक्षण ग्रहण किया और अनेक स्थानीय महिलाओं को इससे जोडा। उन्होंने युद्ध में घायल लोगों की सेवा भी की। अक्टूबर 1945 से मार्च 1946 तक वे बर्मा जेल में रहीं। इसके बाद

उन्हें भारत भेज दिया गया। भारत आने के बाद 1946 से वे कानपुर में रहीं।

महादेवी वर्मा :

महादेवी वर्मा का जन्म 1907 में फर्रुखाबाद में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा इंदौर में तथा उच्च शिक्षा प्रयाग में हुई। सस्कृत मे एम ए करने के बाद वे प्रयाग महिला विद्यापीठ में प्रधानाचार्या हो गईं। उन्होंने 'चाँद' पत्रिका का सम्पादन किया। इनकी छायावादी कवियों की वृहत् कवि चतुष्टयी में गणना होती है। उनकी कविताओं में वेदना की प्रधानता थी। महादेवी वर्मा ने प्रयाग में 'साहित्य-संसद' की स्थापना की। उन्होंने महिलाओं को अपनी अस्मिता को पहचानने के लिए आन्दोलित किया। वे स्त्री-शिक्षा तथा स्त्री-पुरुष समानता की पक्षधर थीं और इसके लिए वे आजीवन प्रयासरत रहीं। साहित्य सेवाओं के लिए उन्हें राष्ट्रपति ने पद्मभूषण पुरस्कार से सम्मानित किया। वे उत्तर प्रदेश विधान परिषद् की सदस्य भी रहीं। 1982 में उन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार और 1983 में भारत-भारती पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 11 सितम्बर, 1987 को वे इस संसार से विदा हो गयीं।

पूर्णिमा बनर्जी :

उत्तर प्रदेश की प्रसिद्ध स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी पूर्णिमा बनर्जी एक समर्पित देशभक्त थीं। वे प्रसिद्ध क्रांतिकारी अरुणा आसफ अली की बहन थीं, लेकिन अपनी बहन के विपरीत वे स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए शांतिपूर्ण और अहिंसक तरीकों में विश्वास करतीं थीं। वे कांग्रेस की सक्रिय कार्यकर्ता थीं। उन्होंने 1930 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन से राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेना प्रारम्भ किया। वे कई बार जेल गईं। उनहोंने 1941 में व्यक्तिगत सत्याग्रह व 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे 1946 में उत्तर प्रदेश विधान सभा की सदस्य बनीं और 1946 में ही संविधान सभा के लिए चुनी गयीं। उनकी मृत्यु 40 वर्ष की अवस्था में 1951 में हुई।

रशीद जहाँ (1905-1952) :

अलीगढ़ में जन्मी रशीद जहाँ 'खातून' पत्रिका के सम्पादक और महिला शिक्षा के प्रचारक शेख अब्दुल्ला की पुत्री थीं। रशीद जहाँ ने 'इसाबेला थोबर्न कालेज' लखनऊ व 'लेडी हार्डिंग मेडिकल कालेज' दिल्ली से शिक्षा प्राप्त की। 1931 में

'अंगारे' (उर्दू) के प्रकाशन के बाद वे अत्यधिक प्रसिद्ध हुईं। परम्परावादी व रूढ़िवादी मुस्लिम समाज में इनकी तीव्र आलोचना हुई। 1934 में उनका विवाह लेखक महमूद-उज-जफ़र के साथ हुआ। 1937 में 'औरत और दूसरे अफसाने व ड्रामे' प्रकाशित हुई। फ़ैज अहमद फैज व इस्मत चुगताई जैसे अनेक लेखकों ने अपने लेखन व जीवन पर रशीद जहाँ के प्रभाव को स्वीकार किया है। 1937 में वे अपने पति के साथ देहरादून में बस गईं और 'प्रगतिशील लेखक सघ' की गतिविधियों में सक्रियता से भाग लेने लगीं। उन्होंने राजनीतिक पत्रिका 'चिगारी' का सम्पादन भी किया। द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ के साथ ही उनके पति व अनेक कार्यकर्ता गिरफ्तार कर लिये गये। रशीद जहाँ ने भूमिगत रहकर अपने राजनीतिक उत्तरदायित्वों को संभाला और उन परिवारों की सहायता की जिनके सदस्य जेल चले गये थे। 1949 में कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़े होने के कारण इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। रिहाई के बाद 1952 तक ये लेखन कार्य से जुडी रहीं। उन्होंनें एक व्यस्त जीवन व्यतीत किया। एक डॉक्टर के रूप में वे अपने मरीजो को देखने के लिए सदैव तत्पर रहती थीं। कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ता के रूप में, लेखक के रूप में, अनेक

नाटकों के निर्देशक के रूप मे और अपने घरेलू दायित्वों के प्रति वे सतत् क्रियाशील रहीं।

सुचेता कृपलानी :

सुचेता कृपलानी का जन्म 1908 में एक परम्परागत बंगाली परिवार में हुआ था। इन्होंने इतिहास और राजनीतिशास्त्र से परास्नातक की डिग्री प्राप्त की और बनारस विश्वविद्यालय में लेक्चरर नियुक्त हुईं, लेकिन शीघ्र ही स्वतन्त्रता आन्दोलन से प्रभावित होकर उसमें कूद पर्डी। वे एक कट्टर गाँधीवादी थीं। उन्होंने 1938 में कांग्रेस के दफ्तर में कार्य करना प्रारम्भ किया और विदेश विभाग का कार्यभार संभाला। कांग्रेस ने इस विभाग का गठ्न विदेशों में हो रहे स्वतन्त्रता आन्दोलन से सम्पर्क रखने के लिए किया था। 1940 में ये कांग्रेस के तत्वावधान में एक 'महिला विभाग' गठित कराने में सफल हुईं। इस विभाग ने महिलाओं में जागरुकता फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1942 के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में भूमिगत होकर वे तब तक सक्रिय रहीं जब तक 1944 में गिरफ्तार न कर ली गईं। 1946 में उत्तर प्रदेश से संविधान सभा के लिए चुनी गईं। वे 1963 से 1967 तक उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री रहीं। किसी भी प्रदेश

की मुख्यमंत्री बनने वाली वे भारत की पहली महिला थीं। उन्होंने स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध महिलाओं में चेतना उत्पन्न की, स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकारों की प्राप्ति के लिए आन्दोलित किया। वे पर्दा-प्रथा, दहेज प्रथा और बाल-विवाह की कट्टर विरोधी व विधवा पुनर्विवाह की पक्षधर थीं। वे स्त्री-शिक्षा के लिए आजीवन प्रयासरत्त रहीं। वेश्याओं के लिए 'पतितोद्धार-समिति' स्थापित की व महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए भी प्रयास किया। उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित करके प्रदेश की महिलाओं को राष्ट्रीय धारा में समाहित करने का प्रयास किया।

सुभद्रा कुमारी चौहान :

1904 में इलाहाबाद में जन्मी सुभद्रा कुमारी चौहान, रामनाथ सिंह की पुत्री थीं। वे हिन्दी की महान कवियित्री होने के साथ स्वतन्त्रता संग्राम की महान सेनानी भी थीं। गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन से अत्यधिक प्रभावित होकर उन्होंने खुलकर राजनीति में भाग लेना प्रारम्भ किया। अपने पति श्री लक्ष्मण सिंह चौहान के साथ मिलकर उन्होंने 'कर्मवीर' नामक पत्र चलाया।

इसमें देशभक्ति पूर्ण लेख छपते थे। वे अनेकों बार जेल भी गईं, लेकिन इससे उनके राजनीतिक क्रियाकलापों में कोई कमी नहींआई। उनकी साहित्यिक कृतियाँ 'मुकुल', 'त्रिधारा' व 'झाँसी की रानी' जैसी कवितायें अत्यधिक लोकप्रिय हुईं। सुभद्रा जी जाति-व्यवस्था की कट्टर विरोधी थीं, जिसका प्रदर्शन उन्होंने अपनी पुत्री सुधा का विवाह मुंशी प्रेमचन्द के पुत्र अमृत राय से कर के दिया। वे महिलाओं के अधिकारों व कल्याण की वकालत करती थीं। उन्होंने अपनी अनेक रचनायें इस प्रयोजन हेतु समर्पित कीं, जैसे—कहानी संग्रह 'बिखरे मोती' व 'उन्मादिनी'। वे एक सफल पत्नी, माँ, कवियित्री और सामाजिक कार्यकर्ती थीं। स्वतन्त्रता के बाद वे मध्यप्रदेश विधान-सभा की सदस्य बनीं। 18 फरवरी, 1948 को एक कार दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो गई।

शांति देवी आचार्य :

श्रीमती शांति देवी का जन्म 1901 में रुड़की में हुआ था। 15 वर्ष की आयु में उनका विवाह जुगल किशोर जी के साथ हुआ। वे एक समाज सेविका व कट्टर गाँधीवादी थीं। 1927 में इन्हें व इनके पति को गाँधी जी के साथ रहने का

अवसर प्राप्त हुआ। गाँधी जी ने इन्हें अपनी ऊर्जा को सामाजिक कार्यों में लगाने के लिए प्रेरित किया। इनका राजनीतिक जीवन 1932 में 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' में भाग लेने से प्रारम्भ हुआ। 1952 में वे उत्तर प्रदेश विधान सभा के लिए निर्वाचित हुई थीं। 1961 मे इनका निधन हो गया।

उर्मिला देवी शास्त्री :

इनका जन्म 1909 में श्रीनगर में हुआ था। जाति के सभी बन्धनों को तोड़ते हुए इन्होंने धर्मेन्द्र शास्त्री से सिविल विवाह किया। 1929 में विवाह के पश्चात् ये मेरठ में रहने लगीं। इन्होंने 'आर्य कन्या गुरुकुल, देहरादून' में अवैतनिक अध्यापिका के रूप में कार्य किया। इन्होंने 1930 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान मेरठ में आन्दोलन का नेतृत्व किया। इनके प्रयासों से 'सत्याग्रह समिति' का गठन हुआ। उर्मिला देवी 3000 महिलाओं को इस समिति की सदस्या बनाने में सफल हुईं। ये 1930-32, 1941 व 1942 के आन्दोलनों के दौरान जेल गईं। 1942 में ही कैन्सर से इनकी मृत्यु हो गयी।

विमला पुरी :

विमला पुरी मुख्य रूप से शिक्षाविद् थीं। इन्होंने मेरठ कालेज से 1942 में राजनीति शास्त्र से एम.ए किया। इसी वर्ष इन्होंने 'भारत छोडो आन्दोलन' में भाग लिया और जेल भी गईं। स्वतन्त्रता के पश्चात् इन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में अपने आप को समर्पित कर दिया। ये 'रघुराज डिग्री कालेज, मेरठ' की 20 वर्ष से अधिक समय तक प्रधानाचार्या रहीं।

विजय लक्ष्मी पंडित :

विजय लक्ष्मी पंडित स्वतन्त्रता सग्राम के महान नायकों पंडित मोतीलाल नेहरू की पुत्री व पंडित जवाहर लाल नेहरू की बहन थीं। 1900 में जन्मी विजयलक्ष्मी 1919 में गाँधी जी से मिलीं। असहयोग आन्दोलन के दौरान उन्होंने अपने सभी गहने 'स्वराज्य कोष' को दे दिये। 1930-32 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में उन्होंने सक्रिय भाग लिया व जेल भी गईं। उन्होंने जुलूसों का नेतृत्व किया, प्रदर्शन व सभायें कीं। 1937 में वे कानपुर जिले से उत्तर प्रदेश विधान सभा चुनाव के लिए खड़ी हुई और निर्वाचित होकर कांग्रेस सरकार में 'स्वास्थ्य मंत्री' भी बनीं। भारत छोड़ो

आन्दोलन में भाग लेने के कारण वे पुनः जेल गईं। 1940 से 1942 तक वे 'अखिल भारतीय महिला कांफ्रेंस' की अध्यक्षा रहीं। 1946 में वे सरकार बनने पर पुनः 'स्थानीय स्वशासन व स्वास्थ्य' मंत्री बनीं। 1946 में ही वे उत्तर प्रदेश से संविधान सभा के लिए चुनी गईं। विजयलक्ष्मी पंडित ने भारत में ही नहीं वरन् विदेशों में भी भारतीय महिला के सम्मान को बढाया। वे 1953 में 'यूनाइट्रेड-नेशन्स जनरल असेम्बली' की पहली महिला अध्यक्षा बनीं। वे अमरीका, रूस, आयरलैंड, स्पेन आदि देशों में भारत की राजदूत रहीं और भारतीय महिलाओं को सम्मान व गौरव प्रदान करती रहीं।

***

परिशिष्ट–'ग'

उत्तर प्रदेश की महिलाओं से सम्बन्धित महत्वपूर्ण तिथियाँ

- 1829 : ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार द्वारा सती प्रथा गैर कानूनी घोषित।
- 1854 : चार्ल्स वुड द्वारा तैयार शिक्षा निर्देश में लड़कियों की शिक्षा को प्रोत्साहन; सरकारी स्तर पर लड़कियों की शिक्षा के प्रयास।
- 1855 . आगरा जिले में स्थानीय शिक्षा अधिकारियों ने लड़कियों की शिक्षा के पक्ष में आन्दोलन संचालित किया।
- 1856 : 'हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम' पारित; विधवाओं की स्थिति सुधारने के लिए समाज सुधारकों द्वारा प्रयत्न।
- 1857 : विद्रोह (स्वतन्त्रता संग्राम) में अवध की बेगम हजरत महल तथा झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की भागीदारी से उत्तर प्रदेश की महिलायें गौरवान्वित हुईं; उत्तर प्रदेश की महिलायें इन वीर नारियों की

प्रेरणा से हमेशा-हमेशा के लिए आन्दोलित होती रहीं।

- 1882 : भारतीय शिक्षा आयोग द्वारा लडकियों की शिक्षा में पिछडेपन को लेकर चिन्ता व्यक्त, स्त्री-शिक्षा के लिए धन एवं अन्य सभी सुविधायें उपलब्ध कराने की सशक्त संस्तुति।

- 1891 : 'भारतीय फैक्ट्री कानून' (इंडियन फैक्ट्री एक्ट) पारित; स्त्रियों से रात की पाली में काम कराने पर प्रतिबन्ध।

- 1892 . 'ब्रह्म मैरेज एक्ट' पारित (अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता प्राप्त)।

- 1905 : कलकत्ता नगर भवन में सम्पन्न हुई सभा ने विदेशी माल के बहिष्कार और स्वदेशी माल के अपनाने हेतु महिलाओं की भागीदारी निर्धारित की तथा इस आन्दोलन में उनके अधिकाधिक योगदान का आह्वान किया।

- 1909 : जी.के. देवधर द्वारा पूना में 'महिला सेवा सदन' की स्थापना; इस सेवा सदन द्वारा उत्तर प्रदेश में अकाल पीड़ितों की सहायतार्थ महिला कार्यकर्तियों को भेजा जाना; सेवा सदन की महिला सदस्यों द्वारा नारी-चेतना का कार्य प्रारम्भ।

- 1910 — सरला देवी चौधरानी द्वारा 'भारतीय स्त्री महामंडल' की स्थापना; भारत स्त्री महामंडल की शाखायें उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद, वाराणसी में स्थापित, नारी-चेतना तथा नारियो को रूढिवादी मान्यताओं से मुक्त करने के प्रयास प्रारम्भ।

- 1916 — एनी बेसेंट द्वारा होमरूल लीग स्थापित, होमरूल लीग में महिलाओं की भागीदारी का प्रयास प्रारम्भ, प्रो. कर्वे द्वारा 'इंडियन वीमेस यूनिवर्सिटी' स्थापित, महिलाओं में शिक्षा-प्रचार का भारतीयों द्वारा सार्थक प्रयत्न; उत्तर प्रदेश की महिलाओं में शिक्षा प्राप्त करने की लालसा उदित।

- 1917 — एनी बेसेंट भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्षा बनीं; ऐनी बेसेंट ब्रिटिश सरकार द्वारा गिरफ्तार; इससे उत्तर प्रदेश की महिलायें आदोलित; श्रीमती सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में एक शिष्ट मण्डल भारत सचिव श्री मांटेग्यू से मिला और माँग प्रस्तुत की कि शिक्षा तथा स्थानीय सरकार से सम्बन्ध रखने वाली निर्वाचित संस्थाओं में मत देने तथा उम्मीदवार खड़े होने की, स्त्रियों के लिए वही शर्तें रखी जायें जो पुरुषों के लिए हैं; मद्रास में एक अखिल भारतीय महिला संगठन 'वीमेन्स इण्डिया एसोसिएशन' की स्थापना।

• 1918 : भारतीय फैक्ट्री कानून के अन्तर्गत स्त्रियो के लिए 12 घंटे काम करने की अवधि निर्धारित; कानपुर की मिलों में काम करने वाली महिलायें हर्षित; श्रमिक महिलायें आंदोलित।

• 1919 संयुक्त प्रान्त में लड़कियों के लिए म्युनिसिपल क्षेत्रों में प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा नारी के उत्थान हेतु प्रस्ताव पारित; नारी का सामाजिक प्रश्न राजनीतिक रूप धारण करता है, राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं की भागीदारी का सूत्रपात; नारी स्वातन्त्र्य संघर्ष का पथ प्रशस्त; अबला बोस द्वारा 'नारी शिक्षा समिति' की स्थापना; 'नारी शिक्षा समिति' की शाखायें उत्तर प्रदेश के नगरों मे स्थापित और महिलाओं को शिक्षित बनाने का प्रयास प्रारम्भ, महात्मा गाँधी द्वारा सत्याग्रह सभा का गठन तथा महिलाओं को भागीदारी करने की प्रेरणा प्रदान करना; महिलाओं का सार्वजनिक कार्यों में रुचि लेना तथा भागीदारी करना प्रारम्भ, जलियाँवाला हत्याकांड से प्रदेश की महिलाओं में व्यापक रोष।

• 1920 : अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में असहयोग आन्दोलन का निश्चय तथा उसमें महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित; इलाहाबाद में नेहरू परिवार की महिलाओं द्वारा

विदेशी वस्त्रों की होली जलाना; महिलाओं का विदेशी माल के बहिष्कार तथा स्वदेशी के अपनाने हेतु आन्दोलित होना; महिलाओं में खादी का प्रचार प्रारम्भ; भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहन प्रदान, ज्योतिर्मयी गांगुली द्वारा पहले स्वयं सेविका दल का गठन।

- 1921 . सेन्सस रिपोर्ट प्रकाशित, 15 वर्ष से कम आयु की देश में सत्तर लाख बत्तीस हजार नौ सौ पैंतीस बाल विधवायें थीं। इनमें 40 प्रतिशत के लगभग उत्तर प्रदेश में थीं। विधवा-पुनर्विवाह के लिए उत्तर प्रदेश में महिलायें आन्दोलित। विदेशी वस्त्रों की होली जलाने का कार्य उत्तर प्रदेश में महिलाओं ने स्वतः संभाला।

- 1922 : असहयोग आन्दोलन समाप्त; महिलाओ द्वारा आर्थिक क्षेत्र में चरखा-कताई-बुनाई को अपनाना; सामाजिक सुधार के कार्यक्रमों में भाग लेना; रूढिवादी मान्यताओं के विरोध में महिलाओं का आन्दोलित होना; नारी शिक्षा के लिए स्वयं सेविकाओं का गठन।

- 1923 : चुनावों में मद्रास, बम्बई और उत्तर प्रदेश की स्त्रियों को मताधिकार प्रदान किया गया, शरतचन्द

चट्टोपाध्याय नारीवादी लेखक के रूप में उत्तर प्रदेश की महिलाओं में लोकप्रिय बने; शरत का लेख 'नारीर मूल्य' प्रकाशित, जिसका हिन्दी अनुवाद उत्तर प्रदेश की शिक्षित महिलाओं में सर्वाधिक चर्चित बना और वे नारीवादी चिन्तक के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

- 1924 : महात्मा गाँधी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्षता करते हुए महिलाओं को सामाजिक क्षेत्र में कार्य करने और राष्ट्रीय संघर्ष में अपनी भागीदारी को अधिकाधिक बढ़ाने का आह्वान दिया।

- 1925 : भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कानपुर अधिवेशन की अध्यक्षा श्रीमती सरोजिनी नायडू बनीं, महिलाओं में सार्वजनिक कार्यों के प्रति रुचि उत्पन्न करने के लिए कांग्रेसजनों का आह्वान, नाबालिग लड़कियों का अवैध अनैतिक व्यापार दंडनीय घोषित।

- 1927 : आल इंडिया वीमेन्स कान्फ्रेंस स्थापित; उत्तर प्रदेश में बड़े नगरों में इसकी शाखायें स्थापित; नारी-स्वातन्त्र्य के लिए संघर्ष का आह्वान।

- 1929 : शारदा ऐक्ट में विवाह की न्यूनतम आयु लड़कियों के लिए चौदह वर्ष और लड़कों के लिए अठारह वर्ष निर्धारित; स्त्री-पुरुष समानता पर बल।

• 1930 : शारदा ऐक्ट क्रियान्वित, कांग्रेस कार्यकारिणी ने सविनय अवज्ञा आदोलन का प्रस्ताव पारित कर महिलाओं की भागीदारी को बढ़ाने का कांग्रेस जनों से आह्वान किया; दांडी कूच कार्यक्रम से महिलाओं में राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य प्रेम के प्रति उत्साह जागृत; श्रीमती कमला नेहरू, श्रीमती मणि बहन की गिरफ्तारी से महिलायें आंदोलित; नेहरू परिवार की सभी महिलायें इलाहाबाद में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौर मे गिरफ्तार; उत्तर प्रदेश की महिलाओं ने आदोलन में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करके अत्यधिक संख्या में गिरफ्तारी दी।

• 1931 कमला नेहरू पुनः गिरफ्तार; महिलायेंआन्दोलित, सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में महिलाओं द्वारा सामाजिक उत्पीड़न, राजनीतिक दासता से मुक्ति के लिए संघर्ष प्रारम्भ; करांची कांग्रेस अधिवेशन में स्त्री–पुरुष के बुनियादी अधिकारों की समानता की घोषणा।

• 1932 : राष्ट्रीय आन्दोलन पर सरकार का दमनचक्र प्रारम्भ; महात्मा गाँधी की गिरफ्तारी से महिलायें आन्दोलित।

• 1933 : श्रीमती नेल्ली सेन गुप्ता भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्ष बनीं; महिलाओं से राष्ट्रीय आन्दोलन

में भाग लेने का सेन गुप्ता का आह्वान, राष्ट्रीय संघर्ष में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी।

- 1934 कांग्रेस द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित, महिलाओं को सामाजिक कार्यों तथा चरखा कातने का कांग्रेस द्वारा आह्वान; महिलाओं को साक्षर बनाने के लिए कांग्रेस द्वारा प्रयास।
- 1935 : किसान सभा द्वारा जमींदारी उन्मूलन का प्रस्ताव पारित; ग्रामीण क्षेत्र की कृषक महिलाओं द्वारा जमींदारी उन्मूलन का व्यापक समर्थन; महिलायें शिक्षित बनने के लिए आंदोलित।
- 1936 . प्रान्तीय स्वायत्तता के लिए कांग्रेस द्वारा जन-चेतना प्रारम्भ; महिलाओं की सार्वजनिक कार्यों में अधिक से अधिक भागीदारी के लिए प्रचार प्रारम्भ; स्त्री-पुरुष समानता के लिए महिलाओं का जोरदार संघर्ष प्रारम्भ।
- 1937 . कांग्रेस द्वारा प्रान्तों में सरकारों का गठन; महिलाओं कीं सरकारों के गठन में भागीदारी का प्रयत्न; चुनाव में उत्तर प्रदेश की श्रीमती विद्यावती राठौर ने सर सी.वाई चिन्तामणि को भारी मतों से पराजित किया, उत्तर प्रदेश की महिलाओं में राजनीतिक कार्यक्रमों के प्रति अत्यधिक उत्साह जागृत; श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित संयुक्त प्रान्त के

मंत्रिमण्डल में सम्मिलित (भारत की वह प्रथम महिला थीं जिन्हें मंत्रिपद प्राप्त हुआ था), उत्तर प्रदेश की महिलायें गौरवान्वित; महिलाओं में नारी-स्वातन्त्र्य की भावना जागृत; महिलाओं में अपने बुनियादी अधिकारों के लिए चेतना उत्पन्न; महिलायें स्त्री-पुरुष समानता के लिए आंदोलित; महिलायें आत्म-निर्भर बनने की दिशा की ओर चेतनशील बनीं; 'हिन्दू वीमेंस राइट टू प्रापर्टी एक्ट' पारित, हिन्दू महिला सम्पत्ति कानून में स्त्रियों को कुछ निश्चित परिस्थिति में अधिक दर्जा प्रदान करने का प्रयास।

- 1938 : कांग्रेस के अध्यक्ष सुभाष चन्द्र बोस ने राष्ट्रीय योजना समिति नियुक्त की, इसके माध्यम से कांग्रेस सरकारों ने योजना के विकास में महिलाओं के उत्थान हेतु कार्यक्रम सम्पादित करने का निश्चय किया; सार्वजनिक कार्यों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने का प्रयत्न किया, महिलाओं को प्रगतिशील बनाने तथा आत्म-निर्भर बनाने के लिए प्रयास किये।

- 1939 : संयुक्त प्रान्त में काश्तकारी अधिनियम पारित; जमींदारों से जमीन बेदखली के अधिकार छीन लिये जाने से ग्रामीण कृषक-महिलायें लाभान्वित; महिलाओं में जन-जागृति के लिए आन्दोलन।

- 1940 : व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन में बिनोवा भावे (पहले सत्याग्रही) और जवाहर लाल नेहरू (दूसरे सत्याग्रही) द्वारा युद्ध विरोधी भाषण से महिलायें उत्साहित, आन्दोलित; दिल्ली चलो आन्दोलन का सूत्रपात, उत्तर प्रदेश की महिलाओं की अधिकाधिक भागीदारी ने सरकार को हतप्रभ कर दिया।

- 1941 . बेरुआ (हरदोई) राज्य के तालुकेदार की रानी विद्यावती, रानी लक्ष्मी देवी सत्याग्रह आन्दोलन में बन्दी; उत्तर प्रदेश की महिलायें सत्याग्रह आन्दोलन हेतु उत्साहित, आन्दोलित; राजनीतिक कार्य-कलापों में महिलाओं की भागीदारी में इजाफा।

- 1942 : भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ, महिलाओं ने मोर्चा संभाला; कस्तूरबा गाँधी की गिरफ्तारी से महिलायें आन्दोलित; श्रीमती सुचेता कृपलानी द्वारा गुप्त रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन का संचालन, महिलाओं की भारत छोड़ो आन्दोलन में अधिकाधिक भागीदारी बढ़ी।

- 1943 : श्रीमती सुचेता कृपलानी द्वारा सत्याग्रह समिति के नाम से आन्दोलन को नवीन गति प्रदान करना; श्रीमती सरोजिनी नायडू द्वारा राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य संघर्ष को प्रभावी बनाने के लिए महिलाओं की अधिक से अधिक भागीदारी के लिये आह्वान।

• 1944 : श्रीमती सरोजिनी नायडू द्वारा महिलाओं को राष्ट्रीय धारा में सम्बद्ध करने का प्रयत्न; उत्तर प्रदेश की महिलाओं द्वारा राष्ट्रीय जन-जागरण का प्रयास प्रारम्भ; महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति चेतनाशील बनाना; सुभाष चन्द्र बोस द्वारा सिंगापुर से आजाद हिंद रेडियो पर गाँधी जी को सम्बोधन—"भारत की स्वाधीनता का आखिरी युद्ध शुरू हो चुका है, राष्ट्रपिता। भारत की मुक्ति के लिए इस पवित्र युद्ध में हम आपका आशीर्वाद और शुभकामनायें चाहते हैं।" इससे महिलाओं में राष्ट्रप्रेम के प्रति अत्यधिक उत्साह जागृत हुआ और राष्ट्रीय संघर्ष में उनकी भागीदारी बढ़ती चली गयी; रानी झांसी रेजिमेट के नाम से स्त्री सैनिकों का दल गठित, इससे महिलायें रोमांचित हुई और उन्हें सार्वजनिक जीवन तथा राजनीतिक क्रिया कलापों में डटकर भाग लेने की प्रेरणा प्राप्त हुई, महिलायें जागरण के प्रति आन्दोलित।

• 1945 : आजाद हिन्द फौज के प्रमुख सेनानियों (पी.के सहगल, शाहनवाज, गुरुबख्श सिंह ढिल्लो) पर लाल किले में ब्रिटिश सरकार द्वारा मुकदमें की कार्यवाही से उत्तर प्रदेश की महिलायें राष्ट्रीयता-स्वातन्त्र्य संघर्ष के ज्वार से उत्साहित, आंदोलित; महिलाओं ने प्रदेश के अनेकानेक स्थानों पर जयघोष के लिए सभायें गठित कीं

और लोकगीतों की रचनायें कीं तथा राष्ट्रभक्तो का अभिनन्दन किया।

- 1946 : बम्बई में नौ-सेना विद्रोह ने उत्तर प्रदेश की महिलाओं को ब्रिटिश दासता से मुक्ति के लिए जोरदार संघर्ष की प्रेरणा दी, इस विद्रोह से प्रदेश की अधिकांश महिलायें रोमांचित हो उठीं थीं क्योकि अधिकांश नौ-सेनिक उत्तर प्रदेश की महिलाओं के सपूत, भाई, पति थे।

- 1947 : भारत ब्रिटिश दासता से स्वतन्त्र हुआ, स्वतन्त्र भारत का उदय, महिलाओं का राष्ट्रीय स्वतन्त्रता पाने का स्वप्न पूर्ण, महिलाओं द्वारा सामाजिक सुधारों के लिए प्रयत्न प्रारम्भ; सामाजिक विषमताओं को मिटाने के लिए महिलायें आंदोलित, शिक्षा प्रचार के लिए महिलाओं में अत्यधिक उत्साह प्रदर्शित, राजनीति-सामाजिक क्रिया कलापों में महिलाओ की भागीदारी बढी; स्त्री-पुरुष समानता के लिए राष्ट्रीय नीति निर्धारण में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित।

***

ग्रन्थ सूची

- अहलूवालिया, एम.एम. — फ्रीडम स्ट्रगल इन इण्डिया, दिल्ली, 1965
- अग्निहोत्री, विद्याधर — फॉलेन विमेन
- अल्टेकर, ए.एस — दि पोजीशन ऑफ वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, बनारस, 1956
- बसु, अपर्णा . द रोल ऑफ विमेन इन इण्डियन स्ट्रगल फॉर फ्रीडम, 1976
- अस्थाना, प्रतिमा : वुमेन मूवमेंट इन इण्डिया, नई दिल्ली, 1970
- आसफ अली, अरुणा . वुमेन्स सफ्रेज इन इण्डिया
- आजाद, मौलाना ए.के., : इण्डिया विन्स फ्रीडम, कलकत्ता, 1959
- एवरेट, जॉन मैटसन — वुमेन एण्ड सोशल चेन्ज इन इण्डिया, 1981
- एडवर्ड, माइकल : ब्रिटिश इण्डिया, 1976
- बाशम, ए एल. : अद्भुत भारत (अनुवादक—वेंकटेश चन्द्र पाण्डेय), 1967
- बेग, तारा अली : इण्डियाज़ विमेन पावर, 1976

• बेसेन्ट, एनी		द फ्यूचर ऑफ इण्डियन पॉलिटिक्स, 1922
• बेसेन्ट, एनी	:	हाऊ इण्डिया फॉट फार फ्रीडम, कलकत्ता, 1915
• बिपिन, चन्द्रा	:	इण्डियाज़ फ्रीडम स्ट्रगल फार इण्डिपेंडेस
• ब्राउन, जे.सी.	:	इण्डियन इन्फैन्टीसाइड . इट्स ओरिजिन, प्रोग्रेस एण्ड सप्रेशन, लंदन, 1857
• बुच, एम.ए.		राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म
• बोस, सुभाष चन्द्र	.	द इण्डियन स्ट्रगल, कलकत्ता, 1964
• कजिन्स, मार्गरेट		इण्डियन वुमनहुड टुडे, इलाहाबाद, 1941
• कजिन्स, मार्गरेट	.	दि अवेकनिंग ऑफ इण्डियन वुमेनहुड
• कूपलैण्ड, आर.		इण्डियन पॉलिटिक्स
• चोपड़ा, पी.एन.	:	क्विट इण्डिया मूवमेन्ट, 1976 (सम्पादित)

- चट्टोपाध्याय, कमलादेवी . वुमन ऑफ इण्डिया (स–तारा अली बेग), नई दिल्ली, 1973
- चटर्जी, ए.सी. इण्डियन स्ट्रगल फार फ्रीडम
- देसाई, ए.आर. . सोशल बैक ग्राउंड आफ इंडियन नेशनलिज्म, 1959
- देसाई, नीरा वीमेन ऑफ मॉडर्न इण्डिया, बम्बई, 1957
- दास, एम.एन. . द इकोनोमिक एण्ड सोशल डेवलपमेंट ऑफ मॉडर्न इण्डिया, कलकत्ता, 1959
- दत्त, आर. पाम. : इण्डिया टुडे
- दिनकर, रामधारी सिंह : संस्कृति के चार अध्याय
- फुलर, एम.बी. द रॉंग्स ऑफ इण्डियन विमेनहुड, न्यूयार्क
- फिशर, लुई . द लाइफ ऑफ महात्मा गाँधी
- फरकुहर . मॉडर्न रिलिजस मूवमेंट इन इण्डिया
- फारुखी, विमला . ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ वीमेन्स मूवमेंट इन इण्डिया, 1996
- गाँधी, एम.के. विमेन एण्ड सोशल इन्जस्टिस, 1959

- गाँधी, एम.के. : वुमेन्स रोल इन सोसाइटी, 1959
- गाँधी, एम.के. : टु द विमेन (सं–हिगोरानी), कराची, 1991
- हट्टी, चन्द्रकला चेंजिंग स्टेटस ऑफ विमेन, बम्बई, 1969
- हट्टी सिंह, कृष्णा वी नेहरूज, बम्बई, 1967
- हबीबुल्ला, ए . सिक्लूशन ऑफ विमेन
- ईश्वरी प्रसाद एण्ड के.एस. सूबेदार · ए हिस्ट्री ऑफ मॉर्डन इण्डिया
- जैन, देवकी (सं.) . इण्डियन विमेन, दिल्ली, 1978
- जकारिया, एच. : रिनेसेन्ट इण्डिया
- जोना, लिडल एण्ड जोशी, रमा : डॉटर्स ऑफ इण्डिपेंडेंस, 1986
- कौर, अजीत : इन्साइक्लोपीडिया ऑफ इण्डियन वुमन
- कौर, मनमोहन : वीमेन इन इण्डियाज फ्रीडम स्ट्रगल, नई दिल्ली, 1985
- कौर, रामकुमारी अमृत चैलेंज टु वुमन, इलाहाबाद, 1946

- केट, मिलेट : सेक्सुअल पॉलिटिक्स, 1970
- लतीफ, शाहिदा : मुस्लिम विमेन इन इण्डिया, पॉलिटिकल एण्ड प्राइवेट रिआलिटीज; 1890-1980
- मजुमदार, आर.सी. : हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया (3 भाग)
- मजुमदार, आर.सी. : हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इण्डियन पीपुल
- मजुमदार, वीना : सिम्बल्स ऑफ पावर, 1979
- मेहता, चेतन : महिला एवम् कानून
- मेहता, हंसा : इंडियन वीमेन
- मेनन, लक्ष्मी : वीमेन इन इण्डिया एण्ड अब्रॉड
- मुखोपाध्याय, कैरोल चैपनिक एण्ड सूसन सीमोर (सं) : वुमन एजुकेशन एण्ड फैमिली स्ट्रक्चर इन इण्डिया
- मिश्रा, लक्ष्मी : एजुकेशन ऑफ विमेन इन इण्डिया
- मित्रा, अजन्ता : विमेन इन चेजिग सोसाइटी, 1993

- मिश्र प्रभाकर, कन्हैयालाल — उत्तर प्रदेश स्वतन्त्रता संग्राम की एक झाँकी, लखनऊ, 1958
- मरडोक, जॉन : ट्वेल्व इयर्स ऑफ इण्डियन प्रोग्रेस
- मुखोपाध्याय, डॉ. श्रीधर नाथ . भारतीय शिक्षा का इतिहास (बड़ौदा, 1961)
- नन्दा, बी.आर — इण्डियन वीमेन फ्राम पर्दा टू मॉडर्निटी, (नई दिल्ली, 1977)
- नेहरू, जवाहर लाल . डिस्कवरी ऑफ इण्डिया, न्यूयार्क, 1946
- नेहरू, जवाहर लाल : एन ऑटोबाइग्राफी
- नेहरू, श्यामा कुमारी : ऑवर कॉज, इलाहाबाद
- निजामी, तब्बसुम : लखनऊ जनपद का राष्ट्रीय इतिहास, लखनऊ, 1961
- ओ' मेली . मॉडर्न इण्डिया एण्ड दि वेस्ट लंदन, 1941
- पणिक्कर, के.एम. : फाउन्डेशन ऑफ न्यू इण्डिया
- पणिक्कर, के.एम. : स्टडीज इन हिस्ट्री
- पाण्डेय रेखा, उपाध्याय : वुमन इन इण्डिया, पास्ट एण्ड प्रेसेन्ट,

नीलम नई दिल्ली, 1990

- पंडित, विजय लक्ष्मी — स्कोप ऑफ हैप्पीनेस, नई दिल्ली
- पंडित, विजय लक्ष्मी — प्रिजन डेज, कलकत्ता, 1945
- राय, भारती — फ्राम द सीम्स ऑफ़ हिस्ट्री, कलकत्ता, 1997
- रीव्स पी.डी., ग्राहम बी.डी. गुडमैन, जे. एम. — ए हैण्ड बुक टु इलेक्शन्स इन उत्तर प्रदेश, 1975
- रामन राव, एम.वी. — ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ द इण्डियन नेशनल कांग्रेस
- रशब्रुक, विलियम्स : द ग्रेट मैन ऑफ इण्डिया
- सरकार, सुमीत : मॉडर्न इण्डिया, नई दिल्ली
- सहाय, गोविन्द : 42 रिबेलियन, दिल्ली 1947
- सारस्वती, एस. : वीमेन इन पॉलिटिकल लाइन इन इण्डिया
- सीतारमैया, पट्टाभि : द हिस्ट्री ऑफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस
- सेनगुप्ता, पद्मिनी — पाइनियर विमेन ऑफ इण्डिया, 1956

- सुमन, श्री रामनाथ उत्तर प्रदेश मे गाँधी जी
- शुक्ला, आर.एल (सं.) आधुनिक भारत का इतिहास
- शर्मा, के सी परिचय इतना इतिहास यही
- शर्मा, डी.एस. . हिन्दूइज्म थ्रू एजेज
- ताराचन्द . हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट इन इण्डिया
- सिंह, ठाकुर प्रसाद (सं.) स्वतन्त्रता सग्राम के सैनिक, उत्तर प्रदेश
- तेन्दुलकर, डी.जी. महात्मा (8 खण्ड)
- थामस, पी. . इण्डियन वीमेन थ्रू एजेज
- विद्वान, एम.एस. : रानाडे, हिज वाइफ्स रैमिनिसेंस, नई दिल्ली, 1968
- व्यास, के.सी. : सोशल रिनेसां इन इण्डिया
- वोहरा, आशा रानी : भारतीय नारी : दशा और दिशा
- जैदी, ए. मुईन : द वे आउट टु फ्रीडम

विवेचित उपन्यासों की कालक्रमानुसार सूची

1904	आदर्श हिन्दू	लज्जाराम शर्मा मेहता

1907	सुशील विधवा	लज्जाराम शर्मा मेहता
1914	अरण्य बाला	ब्रजनन्दन सहाय
—	ठेठ हिन्दी का ठाठ	अयोध्या सिह उपाध्याय 'हरिऔध'
—	अधखिला फूल	अयोध्या सिह उपाध्याय 'हरिऔध'
1917	सेवासदन	प्रेमचन्द
1921	प्रेमाश्रम	प्रेमचन्द
1922	प्रतिज्ञा	प्रेमचन्द
1922	निर्मला	प्रेमचन्द
1924	रंगभूमि	प्रेमचन्द
1928	कायाकल्प	प्रेमचन्द
1929	कंकाल	जयशकर प्रसाद
1929	परख	जयशकर प्रसाद
1930	गबन	प्रेमचन्द
1930	माँ	विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक'
1930	तीन वर्ष	भगवती चरण वर्मा
1931	अप्सरा	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
1932	कर्मभूमि	प्रेमचन्द

1932	कुंडलीचक्र	वृन्दावनलाल वर्मा
1933	तितली	जयशकर प्रसाद
1933	सुनीता	जैनेन्द्र कुमार
1933	लगन	वृन्दावनलाल वर्मा
1933	प्रेम की भेंट	वृन्दावन लाल वर्मा
1933	अलका	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
1934	भिखारिणी	विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक'
1934	संगम	वृन्दावनलाल वर्मा
1936	त्यागपत्र	जैनेन्द्र कुमार
1936	गोदान	प्रेमचन्द
1937	कल्याणी	जैनेन्द्र
1940	शेखर · एक जीवनी	अज्ञेय
1941	पर्दे की रानी	इलाचन्द्र जोशी
1941	दादा कामरेड	यशपाल
1942	निमन्त्रण	भगवती प्रसाद वाजपेयी
1946	घरौंदे	रागेय राघव
1947	संघर्ष	विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक

विवेचित पत्रिकाओं की सूची

- स्त्री दर्पण
- चाँद
- सरस्वती
- हंस
- मर्यादा
- ज्योति
- द मॉडर्न रिव्यू
- गृहलक्ष्मी
- कमला
- कल्याण
- विशाल भारत

समाचार पत्र

- द हिन्दू
- द लीडर
- इंडिपेंडेण्ट

- अमृत बाजार पत्रिका
- आज
- सत्याग्रह समाचार
- द पाइनियर
- द हिन्दुस्तान टाइम्स
- स्वराज्य
- यंग इण्डिया
- प्रताप

अभिलेखीय रिकार्ड

- होम पॉलिटिकल डिपार्टमेंट प्रोसीडिंग्स
- होम पॉलिटिकल कांफीडेशियल प्रोसीडिग्स
- होम पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट्स प्रोसीडिंग्स
- सी आई.डी. रिकार्ड्स, राजकीय अभिलेख, लखनऊ
- क्रिमिनल फाइल रिकार्ड्स
- होम पुलिस रिकार्ड्स
- द इंडियन एनुअल रजिस्टर

- ए.आई.सी.सी रिकार्ड्स

शासकीय प्रकाशित सामग्री

- ए.आई.सी.सी. रिकार्डस
- जनरल रिपोर्ट ऑन द पब्लिक इन्स्ट्रकशन इन द यूनाइटेड प्राविन्सेज ऑफ आगरा एण्ड अवध, 1921-1945 (इलाहाबाद)
- लेजिस्लेटिव असेम्बली प्रोसीडिंग्स ऑफ द युनाइटेड प्राविन्स आगरा एण्ड अवध, 1937, 1938
- द एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट ऑफ द युनाइटेड प्राविन्सेज ऑफ आगरा एण्ड अवध
- प्रोग्रेस ऑफ एजुकेशन इन इण्डिया
- सेसन्स ऑफ इण्डिया
- सेन्सस ऑफ युनाइटेड प्राविन्स आगरा एण्ड अवध
- टुवर्ड्स इक्वालिटी, रिपोर्ट आन द स्टेटस ऑफ विमेन इन इण्डिया, 1974

***